॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद ॥

॥ अथ दशम काण्डम् ॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १ – कृत्यादूषण सूक्त 4
सूक्त २ – ब्रह्मप्रकाशन सूक्त 19
सूक्त ३- सपत्नक्षयणवरणमणि सूक्त 33
सूक्त ४ – सर्पविषदूरीकरण सूक्त 45
सूक्त ५- विजयप्राप्ति सूक्त 56
सूक्त ६- मणिबन्धन सूक्त 81
सूक्त ७ – सर्वाधारवर्णन सूक्त 98
सूक्त ८- ज्येष्ठब्रह्मवर्णन सूक्त 117
सूक्त ९- शतौदनागौ सूक्त 136
सूक्त १० – वशागौ सूक्त 146

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त १ – कृत्यादूषण सूक्त

कृत्या का परित्याग

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१०,१.१॥

जिस कृत्या (घातक प्रयोग) को निर्माताजन अपने हाथों से उसी प्रकार अनेक ढंग का बनाते हैं, जिस प्रकार विवाहकाल में वधू को सजाते हैं। वह कृत्या हमारे समीप से दूर चली जाए, हम उसे दूर करते हैं ॥१०,१.१॥

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिणी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१०,१.२॥

अनेक रूपों वाली, शीर्षभाग वाली, नाक वाली तथा कान वाली बनाई गई जो कृत्याएँ (घातक अभिचार प्रयोग) हैं, वह हमें हानि पहुँचाए बिना दूर चली जाएँ, इन्हें निवारण – विधि द्वारा हम दूर खदेड़ते हैं ॥१०,१.२॥

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥१०,१.३॥

शूद्र, राजी, स्त्री अथवा ब्राह्मणों द्वारा किए गए अभिचार मारकप्रयोग, उन प्रयोक्ताओं के समीप उसी प्रकार लौट जाएँ, जिस प्रकार पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री अपने पिता अथवा भाइयों के पास ही जाती है ॥१०,१.३॥

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥१०,१.४॥

खेत में, गौओं में अथवा पुरुषों पर किए गए कृत्या-प्रयोगों को हम (अपामार्ग) औषधि से पहले ही शक्तिहीन कर चुके हैं ॥१०,१.४॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक्प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत्॥१०,१.५॥

हिंसक-पाप (कृत्या) प्रयोगकर्ता के पास और शपथरूप (शाप आदि) शाप प्रयोता के पास पहुँचें । हम अभिचार कर्म को इस प्रकार भेजते हैं, जिससे वह प्रयोक्ताओं को ही विनष्ट करें ॥१०,१.५॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥१०,१.६॥

अभिचार कर्म को लौटाने में समर्थ आंगिरसी विद्या का ज्ञाता अध्यक्ष ही हमारा अग्रणी नेता (पुरोहित) है। हे पुरोहित ! आप समक्ष आती हुई कृत्याओं को छिन्न-भिन्न करते हुए अभिचारकों को ही विनष्ट करें ॥१०,१.६॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मान् इछो अनागसः ॥१०,१.७॥

हे कृत्ये ! जिस प्रयोक्ता पुरुष ने तुझे "आगे बढ़ो" ऐसा कहा है, उस विरोधी शत्रु के पास तुम दुबारा लौट जाओ । हम निरपराधियों की आप इच्छा न करें ॥१०,१.७॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येव भुर्धिया ।
तं गछ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥१०,१.८॥

जिस प्रकार शिल्पकार विचारपूर्वक रथ के अवयवों को संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार जिसने घातक प्रयोग के अवयवों को मन्त्रशक्ति से जोड़ा है, हे कृत्ये ! आप उसी के समीप लौट जाएँ, वहीं आपका अनुकूल स्थान है । यह मनुष्य तो आपसे परिचय रहित ही है ॥१०,१.८॥

यह त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्विदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥१०,१.९॥

हे कृत्ये ! जिन धूर्त अभिचारकों ने आपको बनाकर धारण किया है, उन घातक प्रयोगों के प्रतिकारक कल्याण साधन दुबारा घातक प्रयोक्ता को लौटाने में समर्थ हैं, इसलिए

इससे तुम्हें नहलाते हैं, जिससे सभी दोषों का निवारण हो ॥१०,१.९॥

यद्दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०,१.१०॥

हम जिस मृत पुत्र वाली, दुर्भाग्य और शोक में स्नान कराने वाली कृत्या को प्राप्त हो गए हैं, वह सभी पाप हमसे दूर हों तथा हमारे पास प्रचुर धन स्थित रहे ॥१०,१.१०॥

यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात्सर्वस्मात्पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥१०,१.११॥

है मनुष्यो ! पितर जनों के निमित्त श्रद्धाञ्जलि देते समय (उनके प्राणान्त के दोषारोपण के साथ) यदि आपका नाम लिया जाए(ऐसा कोई पाप आपसे हुआ हो), तो उन सभी पापों से यह औषधियाँ आपको संरक्षित करें ॥१०,१.११॥

देवैनसात्पित्र्यान् नामग्राहात्संदेश्यादभिनिष्कृतात्।

मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मणा ऋग्भिः पयसा ऋषीणाम् ॥१०,१.१२॥

हे मनुष्यो ! देवों से सम्बन्धित (उनकी अवज्ञा से हुए) पाप, पितरों से सम्बन्धित पाप, अपमानित करने के पाप तथा अपशब्दकथन रूप पापः इन सभी से यह औषधियाँ,मन्त्रशक्ति, ज्ञान-सामर्थ्य और ऋषियों के पयः (आशीर्वाद) सहित हमारी संरक्षण करें ॥१०,१.१२॥

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१०,१.१३॥

जिस प्रकार वायुदेव भूमि से धूलिकणों और अन्तरिक्ष से बादलों को उड़ा देते हैं, उसी प्रकार सभी दुष्प्रभाव मन्त्रशक्ति द्वारा निष्प्रभावी होकर दूर हों ॥१०,१.१३॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१०,१.१४॥

हे कृत्ये ! आप शक्तिशाली मन्त्र से निष्प्रभावी होकर अपने प्रयोक्ताओं को दौड़ते हुए उसी प्रकार विनष्ट करें, जिस प्रकार बन्धन से छूटी हुई गर्दभी ताड़ना दिए जाने पर चिल्लाती हुई दुलत्तियाँ मारती है ॥१०,१.१४॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूतिनी ॥१०,१.१५॥

हे कृत्ये ! यही आपका मार्ग है, शत्रुओं द्वारा भेजी गई आपको दुबारा उन्हीं की ओर भेजते हैं। इस अभिचारक क्रिया द्वारा गाड़ी से युक्त और अनेक सामथ्र्यों से युक्त होकर पृथ्वी पर शब्द (ध्वनि) करती हुई, आप सेना केसमान हमारे शत्रुओं पर प्रत्याक्रमण करें ॥१०,१.१५॥

पराक्ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१०,१.१६॥

हे कृत्ये ! वापस लौटने के लिए आपको प्रकाश दिखे, लेकिन इस तरफ आने के लिए कोई मार्ग दिखाई न दें। आप हमें त्यागकर दूसरी ओर कहीं जाएँ। नौका द्वारा जाने योग्य दुर्गम, नब्बे नदियों को पार करके दूर चली जाएँ । हमें हिंसित न करके दूर चली जाएँ ॥१०,१.१६॥

वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१०,१.१७॥

जिस प्रकार वायु वृक्षों को तोड़ता है, उसी प्रकारं हे कृत्ये ! आप हिंसक शत्रुओं का नाश करते हुए उन्हें उखाड़ फेंकें । उनके गाय, घोड़े और पुरुषों को भी शेष न रखें। अपने निर्माताओं को यहाँ से हटाकर आप सन्ततिहीन हो गए हो', ऐसा आभास कराएँ ॥१०,१.१७॥

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१०,१.१८॥

जो अभिचार कृत्य आपके धान्य (अनाज) , श्मशान और खेत में गाड़कर किए गए हैं, आपकै निरपराध और पवित्र होने पर भी जिन अभिचारकों द्वारा घातक प्रयोग किए गए हैं, उन्हें हम निष्प्रभावी करते हैं ॥१०,१.१८॥

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१०,१.१९॥

लायह गए, जानें गए, गाड़े गए और छलपूर्वक प्रयुक्त वैररूप घातक अभिचार को हेम प्रयोक्ता की ओर ही छोड़ते हैं। जिस स्थान से वह आया है, वहीं घोड़े के समान वापस लौट जाए और अभिचारक की सन्तानों का विनाश करे ॥१०,१.१९॥

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥१०,१.२०॥

हे कृत्ये ! हमारे घर में उत्तम लोहे की तलवारें हैं, हम आपके अस्थि-जोड़ों को भी भली प्रकारे जानते हैं, कि वह कैसी स्थिति में और कितने प्रकार के हैं, अत: आप यहाँ से उठकर दूर शत्रुओं की ओर भाग जाएँ । हमारे द्वारा ने जाने गए हे अज्ञात मारणप्रयोग ! तुम यहाँ क्या (स्वयं लौट जाना या काटे जाना चाहते हो ? ॥१०,१.२०॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥१०,१.२१॥

हे अभिचार कृत्य ! हम तुम्हारे दोनों पैरों और गर्दन को भी काट देते हैं, अत: आप यहाँ से दूर चले जाएँ। प्रजाजनों के संरक्षक इन्द्र और अग्निदेव हमारा संरक्षण करें ॥१०,१.२१॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥१०,१.२२॥

राजा सोम संसार के समस्त प्राणियों के सुखदाता हैं, हम सबके पालक वह सोमदेव हमारे लिए भी सुख देने वाले हैं ॥१०,१.२२॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥१०,१.२३॥

भव और शर्व यह दोनों देव, देवों के विद्युत् रूपी आयुध को घातक दुराचारी पापी के ऊपर फेंकें ॥१०,१.२३॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुछुने ॥१०,१.२४॥

यदि मारण (कृत्या) प्रयोक्ता द्वारा प्रेरित होकर अनेक रूप धारण करके दो अथवा चार पैर वाली बनकर हमारे पास आ रही हो, तो हे दु:ख देने वाली कृत्ये ! आप यहाँ से आठ पैर वाली होकर (दूनी गति से) पुन: लौट जाएँ ॥१०,१.२४॥

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥१०,१.२५॥

घृत से सिक्त, अच्छी तरह से अलंकृत और सभी दुर्दशाओं को धारण करने वाली हे कृत्ये ! आप यहाँ से दूर चली जाएँ।

जिस प्रकार पुत्री अपने पिता को पहचानती हैं, उसी प्रकार आप अपने उत्पादनकर्ताको पहचानें ॥१०,१.२५॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥१०,१.२६॥

हे कृत्ये ! आप यहाँ न रुककर दूर चली जाएँ। शिकारी जिस प्रकार घायल हुए शिकार के स्थान पर जाता हैं, वैसे ही आप भी शत्रु के स्थान पर लौट जाएँ। आप शिकारी रूपा और आपका प्रयोक्ता शिकार के समान है, वह आपका नाश करने में सक्षम नहीं है, अतएव आप लौट जाएँ ॥१०,१.२६॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥१०,१.२७॥

पहले से बैठे हुए को दूसरा व्यक्ति बाण द्वारा मार देता है और पहले मारने वाले घातकी को दूसरा व्यक्ति विनष्ट करता है (इस प्रकार दोनों ही हानि उठाते हैं) ॥१०,१.२७॥

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥१०,१.२८॥

हमारे कथन के अभिप्राय को जानकर जहाँ से आपका आना हुआ था, वहीं पुन: चली जाएँ । हे कृत्ये ! जिसने आपका प्रयोग किया है, उसकी ओर ही आप जाएँ ॥१०,१.२८॥

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥१०,१.२९॥

हे कृत्ये ! निरपराध प्राणियों की हिंसा भयंकर कर्म है, इसलिए आप हमारी गौओं, घोड़ों और मनुष्यों का हनन न करें । जहाँ-जहाँ आप स्थापित की गई हैं, वहाँ से हम आपको हटाते हैं, आप पत्ते से भी सूक्ष्म हो जाएँ ॥१०,१.२९॥

यदि स्थ तमसावृता जालेनभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥१०,१.३०॥

हे कृत्या अभिचारो ! यदि आप अन्धकार से जाल के समान आच्छादित हुए हों, तो उन सभी घातक प्रयोगों को यहाँ से लुप्त करके, हम आपको प्रयोक्ता के पास वापस भेजते हैं ॥१०,१.३०॥

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥१०,१.३१॥

हे कृत्ये ! कपटी घातक प्रयोक्ता जो सन्तानों को विनष्ट करते हैं, आप उनका भी नाश करें। उन अभिचारकों में कोई शेष न रहे, उन सबको मार डालें ॥१०,१.३१॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥१०,१.३२॥

जिस प्रकार सूर्यदेव अन्धकार से निवृत्त होते हैं तथा रात्रि और उषा के ध्वजों का परित्याग करते हैं, उसी प्रकार हम अभिचारी द्वारा किए गए दुष्कृत्यों का परित्याग करते हैं।

हाथी द्वारा धूल झाड़ने के समान सहजभाव से शत्रु के अभिचार प्रयोग को हम दूर करते हैं ॥१०,१.३२॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त २ – ब्रह्मप्रकाशन सूक्त

मनष्य के शरीर का निर्माण तथा देवों की नगरी का वर्णन

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छलङ्खौ मध्यतः कः
प्रतिष्ठाम् ॥१०,२.१॥

मनुष्य की एड़ियों और घुटनों का किसके द्वारा भरा गया है ? सुन्दर अँगुलियों, इन्द्रियों के छिद्रों और तलवों को पोषण किसने दिया ? तथा बीच में आश्रय देने वाले कौन हैं ? ॥१०,२.१॥

कस्मान् नु गुल्फावधरावकृण्वन्न् अष्ठीवन्तावुत्तरौ पुरुषस्य।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत
॥१०,२.२॥

मनुष्य के नीचे के टखनों और ऊपर के घुटनों को किसने विनिर्मित किया है ? जंघाएँ अलग-अलग बनाकर किसने इस स्थान पर स्थापित की ? जानुओं के जोड़ कहाँ हैं ? इसे कौन जानने में समर्थ है ? ॥१०,२.२॥

चतुष्टयं युजते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव
॥१०,२.३॥

चार तरह से अन्त में संयुक्त किया गया शिथिल धड़, पेट और घुटनों के ऊपर जोड़ा गया है । कूल्हे और जंघाओं को किसके द्वारा बनाया गया है? जिनसे धड़ भाग अधिक सुदृढ़ हुआ है ॥१०,२.३॥

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पुरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोदौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥१०,२.४॥

जो मनुष्य की छाती और कण्ठ के ज्ञाता हैं, वह कितने और कौन से देव हैं ? कितने तरह के देवों ने स्तनभाग और

कोहनियों को विनिर्मित किया है ? कितने प्रकार से (जोड़ों से) कन्धों को तथा पसलियों को संयुक्त करते हैं ? ॥१०,२.४॥

को अस्य बाहू समभरद्वीर्यां करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥१०,२.५॥

किस देव ने मनुष्य के वीर्य और भुजाओं को पशत्रु ष्ट किया है, किस देव ने कन्धों को दृढ़ किया और किसने कुसिंध (धड़) पर शारीरिक अंगों को स्थापित किया है ? ॥१०,२.५॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
यहषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति याम्
॥१०,२.६॥

मनुष्य के सिर में दो कान, दो नाक, दो नेत्र और एक मुख, इस प्रकार इन सात छिद्रों को किस देव के द्वारा विनिर्मित किया गया है? किन देवों की विजयी महिमा में द्विपाद और

चतुष्पाद प्राणी विभिन्न मार्गों से होते हुए यमराज के स्थान में गमन करते हैं ? ॥१०,२.६॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत
॥१०,२.७॥

विभिन्न स्थानों में जाने वाली जीभ को जबड़ों के बीच में किसने रखा है और उसमें प्रभावपूर्ण, वाणी को किसने आश्रित किया है ? जल के धारणकर्ता वह देव प्राणियों के अन्दर विचरण करते हैं, इसे कौन जानने में समर्थ है? ॥१०,२.७॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललातं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः
॥१०,२.८॥

इस मनुष्य के मस्तिष्क के ललाट भाग, सिर के कपालभाग, कपाल और जबड़ों के संचय भाग का चयन

करके जो देव सर्वप्रथम द्युलोक पर आरूढ़ हुए, वह कौन से देव हैं? ॥१०,२.८॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्यः ।
आनन्दान् उग्रो नन्दांश्च कस्माद्बहति पूरुषः ॥१०,२.९॥

यह प्रचण्ड पुरुष बहुत-सी प्रिय और अप्रिय वाणी को स्वप्न (निद्रा), पीड़ा, थकावट, आनन्द और हर्ष को किस देव के प्रभाव से धारण करते हैं? ॥१०,२.९॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०,२.१०॥

मनुष्य में पीड़ा, दरिद्रता, पाप और दुर्बुद्धि यह दुष्प्रवृत्तियाँ कहाँ से प्रवेश करती हैं तथा पूर्णता, समृद्धि, विशिष्ट अद्ध, सद्बुद्धि और अभ्युत्थान की यह सहज प्रवृत्तियाँ कहाँ से आती हैं ? ॥१०,२.१०॥

को अस्मिन्न् आपो व्यदधात्विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।

तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥१०,२.११॥

इस मनुष्य शरीर में विशेष प्रकार से विचारशील, सर्वत्र भमणशील, नदी के समान प्रवाहित होने के लिए विनिर्मित, लालवर्ण वाले, लोहित वर्ण वाले, ताँबे और धुएँ के समान वर्ण वाले ऊपर, नीचे और तिरछे वेग से गमनशील जल-प्रवाह किसके द्वारा स्थापित किए गए हैं? ॥१०,२.११॥

को अस्मिन् रूपमदधात्को महानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्रानि पुरुषे ॥१०,२.१२॥

इस मनुष्य देव में रूप-सौन्दर्य, महिमा, नाम-कीर्ति, गतिशीलता, ज्ञान-पिपासा और आचरण सम्बन्धी गुण किन देवों द्वारा प्रतिष्ठित किए गए हैं ? ॥१०,२.१२॥

को अस्मिन् प्राणमवयत्को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पुरुषे ॥१०,२.१३॥

इस मानव देह में प्राण, अपान, व्यान और समान वायु किन देवों द्वारा प्रतिष्ठित किए गए हैं ? ॥१०,२.१३॥

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पुरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥१०,२.१४॥

इस मनुष्य देह में परस्पर सहकार सहयोग की यज्ञीय भावनाओं और सत्यनिष्ठा को कौन प्रमुखदेव स्थापित करते हैं? कौन असत्य, मृत्यु और अमरत्व को इसमें प्रतिष्ठित करते हैं? ॥१०,२.१४॥

को अस्मै वासः पर्यदधात्को अस्यायुरकल्पयत्।
बलं को अस्मै प्रायछत्को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१०,२.१५॥

जिससे इस मनुष्य का शरीर आच्छादित है, उस आवरण (चर्म) को किसने पहनाया है ? आयु की कल्पना किसके द्वारा की गई? इसे बल-सामर्थ्य किसने दी तथा इसमें गतिशीलता किसने स्थापित की है? ॥१०,२.१५॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद्रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥१०,२.१६॥

जल का विस्तार किसके द्वारा हुआ? इसके प्रकाश के लिए दिन किसने बनाया? उषा को किसके द्वारा प्रकाशित किया गया ? तथा सायंकाल को किस देव द्वारा प्रदान किया गया? ॥१०,२.१६॥

को अस्मिन् रेतो न्यदधात्तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्न् अध्यौहत्को बाणं को नृतो दधौ ॥१०,२.१७॥

सन्तति विस्तार के लिए प्रजनन सामर्थ्य किसने स्थापित की ?इसमें विचारशक्ति किसने प्रतिष्ठित की ? वाक् शक्ति और नृत्य भावों (हाथ, पैर की संचालन क्रिया) को किन देवों द्वारा मनुष्यों में प्रतिष्ठित किया गया?॥ ॥१०,२.१७॥

केनेमां भूमिमौर्णोत्केन पर्यभवद्दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पुरुषः ॥१०,२.१८॥

किस सामर्थ्य द्वारा इस भूमि को और द्युलोक (स्वर्ग) को आच्छादित किया गया है ? किस महत्ता के द्वारा पर्वतों को

आच्छादित किया गया और यह मनुष्य किसकी प्रेरणा से कर्मों में प्रवृत्त होता है ? ॥१०,२.१८॥

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥१०,२.१९॥

यह मनुष्य किस देव की सामर्थ्य से पर्जन्य, ज्ञानवान् सोम, यज्ञ (सत्कर्म) और श्रद्धा आदि को प्राप्त करता है ? किसके द्वारा इसका मन सत्कर्म की ओर प्रवृत्त किया गया है ? ॥१०,२.१९॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥१०,२.२०॥

किस देव की सामर्थ्य से यह पुरुष श्रोत्रिय, परमात्मज्ञान और अग्नि को जानने तथा संवत्सर-काल का मापन करने में समर्थ होता है ? ॥१०,२.२०॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥१०,२.२१॥

ब्रह्म ही श्रोत्रिय, परमेष्ठी प्रजापति और अग्नि को संव्याप्त कर रहे हैं, ब्रह्म (ज्ञान) ही संवत्सरं काल का मापन कर रहे हैं ॥१०,२.२१॥

केन देवामनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन् नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥१०,२.२२॥

किस सामर्थ्य से देवों की अनुकूलता में मनुष्य रहने में समर्थ है? दिव्यतायुक्त प्रजाओं के अनुकूल कैसे रहा जा सकता है? किससे वह क्षत्रहीन (शौर्यहीन) और किससे उत्तम क्षेत्र (शौर्य-सम्पन्न) कहलाता है ॥१०,२.२२॥

ब्रह्म देवामनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन् नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते ॥१०,२.२३॥

ब्रह्म ही देवों के अनुशासन में उसे (मनुष्य को) जीना सिखाता है । ब्रह्म ही दिव्यता सम्पन्न प्रजाओं को अनुकूल आवास प्रदान करता है । ब्रह्म ही उत्तम क्षात्रबल और वही क्षात्र से भिन्न अन्य बल है ॥१०,२.२३॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥१०,२.२४॥

इस भूमि को विशिष्टतापूर्वक किसने स्थापित किया? द्युलोक को उत्तर (अधिक ऊपर) तथा अन्तरिक्ष को ऊपर तिरछा और फैला हुआ किसने स्थापित किया है ? ॥१०,२.२४॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥१०,२.२५॥

ब्रह्म ही इस भूमि के उच्च (भाग में) द्युलोक, ऊपर तिरछे तथा फैले हुए अन्तरिक्ष के निर्माता हैं ॥१०,२.२५॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥१०,२.२६॥

प्रजापति ने उसके सिर और हृदय को आपस में जोड़ा, तत्पश्चात् ऊर्ध्व पवमान वायु ने इसके मस्तिष्क और शीर्षभाग को प्रेरित किया ॥१०,२.२६॥

तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥१०,२.२७॥

अथर्वा (प्रजापति) द्वारा प्रदत्त सिर (शीर्ष भाग) सरलता से विद्यमान है और यह देवों का सुरक्षित खजाना है । उस सिर का संरक्षण प्राण, अन्न और मन करते हैं ॥१०,२.२७॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३ तिर्यङ्नु सृष्टा३ सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवा३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥१०,२.२८॥

जो पुरुष ब्रह्म की नगरी के ज्ञाता हैं, जिसके कारण ही उसे पुरुष कहा गया है, पुरुष ऊपरी दिशा, तिरछी दिशा तथा सभी दिशाओं में उत्पन्न होकर अपने प्रभाव का परिचय देते हैं ॥१०,२.२८॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥१०,२.२९॥

जो निश्चितरूप से अमृत से परिपूर्ण ब्रह्म की नगरी के ज्ञाता हैं, उन्हें ब्रह्म और अन्य देव नेत्र, प्राण और सन्तति देते आयह हैं ॥१०,२.२९॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥१०,२.३०॥

जिसके कारण उसे पुरुष कहा गया है, उस ब्रह्म की नगरी का जो ज्ञाता हैं, बुढ़ापे से पहले उस पुरुष का साथ नेत्र और प्राण नहीं छोड़ते ॥१०,२.३०॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥१०,२.३१॥

जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार हैं, देवशक्तियों की पुरी (नगरी) यह अयोध्या है, उसमें जो तेजस्वी कोश हैं, वहीं

तेजस्विता से युक्त होकर स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण हैं ॥१०,२.३१॥

तस्मिन् हिरण्ययह कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥१०,२.३२॥

तीन अरों से युक्त, तीन केन्द्रों में स्थित, तेजस्वी कोश में जो आत्मवान् यक्षा (पूजनीय आत्मा) का स्थान है, उसे निश्चित ही ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥१०,२.३२॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥१०,२.३३॥

देदीप्यमान, दुःखनाशक, यश से सम्पन्न और पराजय रहित, ऐसी प्रकाशमय पुरी में ब्रह्म प्रवेश करता है ॥१०,२.३३॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ३- सपत्नक्षयणवरणमणि सूक्त

वरणमणि का वर्णन, समस्त रोगों की ओषधि तथा सोमपीथ और मधुपर्क यज्ञ

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१०,३.१॥

वरण नामक यह मणि शत्रुजनित अनिष्टों का निवारण करने में सक्षम है और अभीष्टफलों की वर्षक हैं। उसके सहयोग से आप प्रयलशील हों और दुर्भावनाओं से ग्रस्त शत्रुओं का विनाश करें ॥१०,३.१॥

प्रैणान् छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः १०,३.॥२॥

यह वरणमणि आपके उद्देश्य में आगे-आगे चले, आप इन शत्रुओं को मसल डालें तथा अपने वशीभूत करें। इसके सहयोग से देवगणों ने प्रतिदिन राक्षसों के अभिचार कृत्यों का निवारण किया ॥१०,३.२॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रून् अधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि यह त्वा द्विषन्ति ॥१०,३.३॥

वरणमणि विश्व भेषज (सभी रोगों की दवा) है। यह मणि सहस्राक्ष के समान पराक्रमशाली, दु:खों का हरण करने वाली, हिरण्य (स्वर्ण या सार) रूप है । जो शत्रु आपसे द्वेष करते हैं, यह उनका पतन करने में सक्षम हैं।आप उनका दमन करें ॥१०,३.३॥

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्।
अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्वरणो वारयिष्यते ॥१०,३.४॥

वरणमणि चारों ओर से फैलायह गए अभिचार कृत्यों को आपसे दूर करेगी। मनुष्यकृत भय को दूर करके यह

वरणमणि आपको समस्त पापकर्मों से पृथक् करेगी ॥१०,३.४॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्न् आविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१०,३.५॥

यह वरणमणि हमारे रोगरूप शत्रुओं का निवारण करे । रोगी मनुष्य में जो यक्ष्मारोग प्रवेश कर चुके हैं, देव शक्तियाँ उनका निवारण करें ॥१०,३.५॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥१०,३.६॥

हे पुरुष !यदि आप स्वप्न में सोते समय पाप के दृश्यों को देखते हों, अनुपयुक्त दिशा की ओर पशु भागता हो; इन अपशकुनों, शकुनि पक्षी के कठोर शब्दों और नाक फुरफुराने के दोषों से यह मणि आपको संरक्षित करेगी॥१०,३.६॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणो वारयिष्यते ॥१०,३.७॥

हे पुरुष ! यह वरणमणि आपको शत्रुओं, पापदेवता, अभिचार प्रयोग, मृत्यु के भयानक संहार और अन्य भय से सुरक्षित करेगी ॥१०,३.७॥

यन् मे माता यन् मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥१०,३.८॥

हमारे माता-पिता, बान्धवजनों और आत्मीय परिजनों द्वारा प्रमावश जो भी पापकर्म बन पड़े हों, उनसे यह वनस्पतिदेव हमारा संरक्षण करेंगे ॥१०,३.८॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥१०,३.९॥

इस वरणमणि और हमारे बान्धवों से शत्रु समुदाय पीड़ित हों । वह अन्धकारपूर्ण विस्तृत धूलयुक्त स्थान को प्राप्त करें तथा भयानक अन्धकार से आच्छादित हों ॥१०,३.९॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०,३.१०॥

हम अनिष्टरहित होकर शान्ति लाभ प्राप्त कर रहे हैं। समस्त परिवारीजनों से युक्त होकर हम दीर्घायु प्राप्त करें, यह वरणमणि समस्त दिशाओं और उपदिशाओं में हमारी संरक्षक हो ॥१०,३.१०॥

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यून् इवासुरान् ॥१०,३.११॥

यह दिव्यतायुक्त, वनस्पति विनिर्मित वरणमणि दीप्तिमान् होते हुए हमारे हृदयक्षेत्र में प्रतिष्ठित है । जिस प्रकार इन्द्रदेव असुरों को संताप देते हैं, उसी प्रकार यह वरणमणि हमारे लिए कष्टप्रद शत्रुओं को पीड़ित करे ॥१०,३.११॥

इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान् छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशून् ओजश्च मे दधत्॥१०,३.१२॥

इस वरणमणि द्वारा हमारे अन्दर राष्ट्रीय प्रेम, रक्षण-सामर्थ्य, गौ आदि पशुओं की प्राप्ति तथा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल की स्थापना हो । शतायु होने के लिए हम इस मणि को धारण करते हैं ॥१०,३.१२॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जातामुतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१०,३.१३॥

जिस प्रकार वायुदेव अपने तीव्र वेगरूपी बल से वृक्षों और वनस्पतियों को तोड़ देते हैं। उसी प्रकार यह वरणमणि पहले से बने हुए और बाद में उत्पन्न अन्य शत्रुओं को विनष्ट करे । हे यजमान ! यह वरणमणिआपका संरक्षण करे ॥१०,३.१३॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।

एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान् जातामुतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१०,३.१४॥

जिस प्रकार अग्नि और वायु मिलकर वृक्ष-वनस्पतियों को विनष्ट कर डालते हैं, उसी प्रकार हे वरणमणे ! आप पहले से उत्पन्न हुए और पीछे से उत्पन्न शत्रुओं का हनन करें । हे यजमान ! यह वरणमणि आपको संरक्षण करे ॥१०,३.१४॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय ।
पूर्वान् जातामुतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१०,३.१५॥

वायु से कमजोर हुए वृक्ष जिस प्रकार पृथ्वी पर गिरकर लेट जाते हैं, उसी प्रकार हे वरणमणे ! आप हमारे पूर्व उत्पन्न और बाद में उत्पन्न शत्रुओं को कमजोर (दुर्बल) करके धराशायी करें । हे यजमान ! यह वरणमणिआपकी संरक्षक हो ॥१०,३.१५॥

तांस्त्वं प्र छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात्पुरायुषः ।

य एनं पशुषु दिप्सन्ति यह चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१०,३.१६॥

हे वरणमणे ! जो इस यजमान के गवादि पशुओं और राष्ट्रीय स्वाभिमान के विघातक राष्ट्रद्रोही शत्रु हैं, आप उन्हें आयु क्षीण होने और निश्चित प्रारब्ध भोगने से पहले ही विनष्ट कर डालें ॥१०,३.१६॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.१७॥

जिस प्रकार सूर्यदेव अत्यन्त प्रकाशमान और तेजस्वितायुक्त हैं, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करे तथा हमें तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१०,३.१७॥

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.१८॥

जिस प्रकार सभी के लिए (दर्शनीय) चन्द्रमा और आदित्य यशोभागी हैं, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करे तथा हमें तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१०,३.१८॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.१९॥

जिस प्रकार पृथ्वी और जातवेदा अग्नि में यश विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करे तथा तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१०,३.१९॥

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२०॥

जिस प्रकार कन्याओं और युद्ध के लिए तैयार रथों में यशस्विता है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और

ऐश्वर्य प्रदान करती हुई, तेजस्विता और यश-सम्मान से हमें सुशोभित करे ॥२०॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२१॥

जिस प्रकार सोमपीथ (सोमपेय) और मधुपर्क में यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करती हुई, तेजस्विता और यश से सम्पन्न करे ॥१०,३.२१॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२२॥

अग्निहोत्र और वषट्कार में जिस प्रकार यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करे तथा तेजस्विता और यशस्विता से हमें संयुक्त करे ॥१०,३.२२॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२३॥

जिस प्रकार यजमान और यज्ञ में यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करते हुए तेजस्विता एवं यश से संयुक्त करे ॥१०,३.२३॥

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२४॥

जिस प्रकार प्रजापति और परमेष्ठी में यश प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करते हुए तेजस्वितायुक्त सम्मान से सम्पन्न करे ॥१०,३.२४॥

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यछतु ।
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१०,३.२५॥

जिस प्रकार देवशक्तियों में अमृत और सत्य प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करते हुए तेजस्विता एवं यशस्विता से संयुक्त करे ॥१०,३.२५॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ४ – सर्पविषदूरीकरण सूक्त

देवों के रथों का वर्णन, श्वेत पद द्वारा सर्पो का विनाश तथा इंद्र की प्रशंसा

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत्।
अहीनामपमा रथ स्थानुमारदथार्षत्॥१०,४.१॥

सर्वप्रथम रथ (रस या बल) इन्द्रदेव के, द्वितीय स्तर के रथ देवताओं के, तृतीय स्तर के रथ वरुणदेव के हैं। सर्पो के रथ (बल) 'अपमा' (निम्न गतिशील, इस नाम से जाने जाते हैं, जो स्तम्भ (सूखी लकड़ी) रूप में भी चले जाते हैं तथा पुनः भाग जाने में कुशल हैं ॥१०,४.१॥

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥१०,४.२॥

यह कुशा सामान्य सर्पों के लिए शोकप्रद, अश्वनामक औषधि सर्प की विषनाशक और पुरुष नामक औषधि विषनिवारक है ।रथ बन्धूर और तरूणक (तृण विशेष), यह सभी साँपों के विष को दूर करने में सहायक हैं ॥१०,४.२॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥१०,४.३॥

हे श्वेत सर्षप औषधे !आप दायें और बाँयें दोनों पद प्रक्षेप द्वारा सर्पों के विष को विनष्ट करें । नदी प्रवाह में काष्ठ गिर जाने के समान मंत्र शक्ति से सर्प-विष का प्रभाव सारहीन हों ।आप भयानक विष का भी निवारण करें ॥१०,४.३॥

अरंघुषो निमज्योन्मज पुनरब्रवीत्।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥१०,४.४॥

अलंघुष औषधि ने (विषनिवारण हेतु) प्रविष्ट होकर तथा बाहर आकर बताया कि नदी प्रवाह में काष्ठ गिरने के समान सर्प-विष सारहीन हो गया है । हे औषधे ! आप विष का निवारण करें ॥१०,४.४॥

पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाकाः ॥१०,४.५॥

'पैट्स' नामक औषधि कसल, श्वित्र और असित (काले) साँपों के विष प्रभाव को समाप्त करने वाली है। इसी ने रथ और पृदाकु (बड़े साँप) के शीर्ष भाग को छिन्न-भिन्न कर दिया था ॥१०,४.५॥

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात्पथो यहन स्मा वयमेमसि ॥१०,४.६॥

हे पैट्स नामक औषधे ! आप प्रमुख हैं, अतएव आप यहाँ आएँ, हम आपकी स्तुति करते हैं। जिन मार्गों से हम जाने के इच्छुक हैं, उन मार्गों से सर्पों को दूर करें ॥१०,४.६॥

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्यो वाजिनीवतः ॥१०,४.७॥

सर्प विष के निवारक पैट्स (फुर्तीला) औषधि प्रकट हो चुकी है, यही इसका प्रिय स्थल है ।यह उसी सर्पनाशक गतिशील के पद-चिह्न हैं ॥१०,४.७॥

संयतं न वि ष्परद्व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥१०,४.८॥

सर्प का बन्द मुख (हमें डसने के लिए खुले ही नहीं और खुला हुआ बन्द न होने पाए। इस क्षेत्र में जो नर और मादा दो साँप हैं, वह दोनों मन्त्र प्रभाव से सारहीन हो जाएँ ॥१०,४.८॥

अरसास इहाहयो यह अन्ति यह च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥१०,४.९॥

जो साँप हमारे आस-पास रहने वाले हैं तथा जो दूर जंगल या निर्जन स्थानों में रहने वाले हैं, वह सभी विषहीन हो जाएँ । हम साँप को लाठी प्रहार और बिच्छू को हथौड़े से मारते हैं ॥१०,४.९॥

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयो स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत्॥१०,४.१०॥

अघाश्व और बिना किसी विशेष उद्देश्य से उत्पन्न होने वाले स्वज, इन दोनों की औषधि हमारे पास है। इन्द्रदेव ने प्राणघातक पापकर्मी पैट्स औषधि को हमारे अधीन कर दिया है ॥१०,४.१०॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥१०,४.११॥

हमारी मान्यता है कि अंचल प्रभावयुक्त, स्थिर पैट्स के पृष्ठभाग में, यह साँप शोकग्रस्त होकर खड़े रहते हैं ॥१०,४.११॥

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१०,४.१२॥

वज्रधारी इन्द्रदेव ने इन साँपों की प्राणशक्ति और विषप्रभाव को विनष्ट कर दिया था। देवराज इन्द्र द्वारा संहारित सर्पों को हम भी मारते हैं ॥१०,४.१२॥

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥१०,४.१३॥

तिरछी धारियों वाले तिरश्चिराजी नामक साँप मंत्रप्रभाव से विनष्ट हुए तथा कुत्सित हुंकार करने वाले पृदाकु नामक सर्प पीस डाले गए हैं। हे यजमान ! करैत नामक काले साँप, श्वित्र नामक चितकबरे साँप और कृष्णकाय, इन सभी साँपों को कुशा के बीच मार डालें ॥१०,४.१३॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीनामुप सानुषु ॥१०,४.१४॥

भील जाति की यह कुमारी कन्या हिरण्यी (चमकदार तेज) कुदाल से पर्वतीय शिखरों पर औषधियों का खनन करती है ॥१०,४.१४॥

आयमगन् युवा भिषक्पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१०,४.१५॥

यह सर्व-विष निवारक अपराजित (नायक अथवा पराजित न होने वाला) युवा वैद्य (उपचार) आ गया है, वह (वैद्य) स्वज नामक साँप और बिच्छू, इन दोनों के विष को नष्ट करने में सक्षम है ॥१०,४.१५॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन् मित्रश्च वरुणश्च ।
वातापर्जन्योभा ॥१०,४.१६॥

इन्द्र, सूर्य, वरुण, वायु तथा पर्जन्य यह सभी देव हमारे समीप आयह हुए साँपों का संहार करते हैं ॥१०,४.१६॥

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत्पृदाकुं च पृदाक्मम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१०,४.१७॥

इन्द्रदेव ने पृदाकु, पृदाक्म, स्वज, तिरश्चिराजीं, कसल और दशौनसि, इन साँपों को हमारे कल्याण के निमित्त नियन्त्रित कर लिया है ॥१०,४.१७॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित्तेषामसद्रसः ॥१०,४.१८॥

हे सर्प ! आपके जन्मदाता को इन्द्रदेव ने पहले ही समाप्त कर दिया था। उन सर्पों के संहारकाल में कौन सर्प सामर्थ्यवान् रह सका था ? ॥१०,४.१८॥

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥१०,४.१९॥

साँपों को नियन्त्रित करने में निष्णात, हम साँपों को गर्दन से पकड़ लें, जिस प्रकार केवट (अपनी कुशलता से) नदी के गहरे मध्यभाग में पहुँच कर (सकुशल) लौट आता है। हम भी उसी प्रकार साँपों के विष को विशेष रीति से शोधित कर डालें ॥१०,४.१९॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥१०,४.२०॥

सभी प्रकार के सर्पों के विष को नदियाँ बहाकर ले जाएँ। तिरश्चिराजी नामक सर्प और पृदाकु आदि महासर्प नष्ट हो गए हैं ॥१०,४.२०॥

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु विषम् ॥१०,४.२१॥

हम अपनी कल्याणकारिणी प्रेरणा से औषधियों को उपजाऊ भूमि पर धान्य उगायह जाने के समान ही प्राप्त करते हैं। हे सर्प ! तेरे विष का निवारण हो ॥१०,४.२१॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥१०,४.२२॥

जो विष, अग्नि, सूर्य, भूमि, कन्दों तथा वनस्पतियों में विद्यमान है, वह सम्पूर्ण विष आप में (वनस्पति विशेष)में आ जाए और आपके (उस) विष का पूर्ण निवारण हो ॥१०,४.२२॥

यह अग्निजा औषधिजा अहीनां यह अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
यहषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥१०,४.२३॥

अग्नि, औषधि, जल और सर्पों में उत्पन्न हुए, जो मनुष्य को प्रकम्पित करने वाले विद्युद्धर्मी विष हैं, जिनके द्वारा विशाल कर्म किए गए हैं, उन साँपों को हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥१०,४.२३॥

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥१०,४.२४॥

तौदी और घृताची इन नामों की एक कमनीय औषधि है । हे औषधे ! नीचे की ओर पैर करके आपके विषनाशक भाग को हम प्राप्त करते हैं ॥१०,४.२४॥

अङ्गादङ्गात्प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥१०,४.२५॥

हे रोग मनुष्य ! हम आपके हृदय क्षेत्र को संरक्षित करते हुए प्रत्येक अङ्ग – अवयव से विष को निकालें, तत्पश्चात् उस विष का प्रभाव नीचे की ओर जाता हुआ दूर हो जाए ॥१०,४.२५॥

आरे अभूद्विषमरौद्विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात्सोमो निरणयीत्।
दंष्टारमन्वगाद्विषमहिरमृत ॥१०,४.२६॥

विष का निवारण हुआ, विष को बाँध दिया गया, औषधि में मिलकर विष पूर्ववत् प्रभावहीन हो गया है। अग्नि द्वारा जलाकर सर्प के विष का निवारण हुआ। सोम औषधि सर्प विष को दूर करती है । डसने वाले सर्प का विष पहुँच गया है, उससे सर्प की मृत्यु हो गई ॥१०,४.२६॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ५- विजयप्राप्ति सूक्त

जल की स्तुति तथा वर्णन, सप्तऋषियों का अनुवर्तन तथा दिव्यजनों और अग्नि देव से प्रार्थना

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१०,५.१॥

हे दिव्य प्रवाह ! आप इन्द्रदेव के ओज – बल, शत्रु- पराभव के पराक्रम और ऐश्वर्य हैं। ऐसे गुण- सम्पन्न आपको विजय-प्राप्ति के निमित्त हम ब्रह्म योगों (ज्ञानादि) के साथ संयुक्त करते हैं ॥१०,५.१॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥१०,५.२॥

आप इन्द्रदेव के ओज, बल, संघर्ष- शक्ति और ऐश्वर्य हैं । विजय प्राप्ति हेतु हम आपको क्षात्रबल से संयुक्त करते हैं ॥१०,५.२॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायहन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥१०,५.३॥

आप इन्द्रदेव के ओज, संघर्षकशक्ति, पराक्रम और ऐश्वर्य हैं, ऐसे आपको हम विजय प्राप्ति के निमित्त इन्द्रयोग (संगठन) के साथ संयुक्त करते हैं ॥१०,५.३॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥१०,५.४॥

आप इन्द्रदेव के ओज, संघर्षकशक्ति, पराक्रम और वैभव हैं, विजय-प्राप्ति हेतु हम आपको सोमादि योगों के साथ संयुक्त करते हैं ॥१०,५.४॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥१०,५.५॥

आप इन्द्रदेव की ओजस्विता, संघर्ष-क्षमता और ऐश्वर्य हैं, विजय-प्राप्ति के लिए हम आपको जल योगों से संयुक्त करते हैं ॥१०,५.५॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥१०,५.६॥

आप इन्द्रदेव की ओजस्विता, संघर्ष-शक्ति और वैभव हैं । विजय-प्राप्ति के निमित्त सभी प्राणी आपके समीप रहें तथा यह अप् (दिव्य-प्रवाह) भी हमारे साथ रहे ॥१०,५.६॥

अग्नेर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.७॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप अग्नि के अंश हैं। जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें । प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१०,५.७॥

इन्द्रस्य भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.८॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप इन्द्र के अंश हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१०,५.८॥

सोमस्य भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.९॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप सोम के अंश हैं। जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें । प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१०,५.९॥

वरुणस्य भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.१०॥

हे दिव्य प्रवाहो ! आप वरुण के अंश हैं । जल के शुक्ररूप तेजस् को आप हममें स्थापित करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥१०,५.१०॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.११॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप मित्रावरुण के भाग हैं । जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें । प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥१०,५.११॥

यमस्य भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.१२॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप यमदेव के भाग हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें । प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१०,५.१२॥

पितृणां भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.१३॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप पितर गणों के अंश हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें । प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१०,५.१३॥

देवस्य सवितुर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादयह ॥१०,५.१४॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप सर्वप्रेरक सवितादेव के अंश हैं । जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें ।

प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥१०,५.१४॥

यो व आपोऽपां भागोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१०,५.१५ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो जलीय भाग हैं, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय अंश है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.१५॥

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १०,५.१६ ॥

है अप् प्रवाहो ! आपकी जो गतिशील लहरें हैं, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.१६॥

यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१०,५.१७ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो वत्स (विकासमान अंश) है । जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस

ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.१७॥

यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१०,५.१८ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो वृषभ (बलशाली या वर्षणशील अंश) है । जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजंनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, इस ज्ञान-प्रयोग से इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्टकरें ॥१०,५.१८॥

यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १०,५.१९ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो हिरण्यगर्भ रूप है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दें तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, इस ज्ञान-प्रयोग से इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.१९॥

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१०,५.२० ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो अश्म (पत्थर जैसा सुदृढ़), सूर्य जैसा दिव्य अंश है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु की ओर छोड़ते हैं। वह हमें

पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.२०॥

यो व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१०,५.२१ ॥

हे अप् प्रवाहों ! आपका जो अग्नि जैसा उष्ण भाग है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छाड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१०,५.२१॥

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात्सर्वस्माद्दुरितात्पान्त्वंहसः ॥१०,५.२२॥

तीन वर्ष के अन्तराल में हमसे जो भी मिथ्या वचन कहे गए हों, उन सभी दुर्गति देने वाले पापकृत्यों से जल हमें संरक्षित करें ॥१०,५.२२॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत्॥१०,५.२३॥

हे अप् प्रवाहो ! हम आपको समुद्र (अन्तरिक्ष) की ओर भेजते हैं, आप अपने उद्गम स्थल में विलीन हो जाएँ। आपकी गति सभी जगह है । आप हिंसा के निवारक हैं, अत: कोई शत्रु हमारा संहार न करने पाए ॥१०,५.२३॥

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥१०,५.२४॥

यह अप् प्रवाह निर्दोष हैं। वह हम सबसे पाप-दोषों को हटाएँ । उत्तमरूप वाले यह प्रवाह हमसे दुर्गतियुक्त पापों, दुष्ट स्वप्नों से उत्पन्न पापकर्मों और मल-विक्षेपों को बहाकर दूर ले जाएँ ॥१०,५.२४॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.२५॥

विष्णुदेव (पोषणकर्ता) के समान ही आपका पराक्रम है । शत्रुओं के नाशक आप पृथ्वी पर प्रशंसित और अग्नि की तेजस्विता से युक्त हैं। आप पृथ्वी पर विशेष पराक्रम करें । हम पृथ्वी से उन्हें हटाते हैं, जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं । वह जीवित न रहें, प्राणतत्त्व उनका परित्याग करें ॥१०,५.२५॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.२६॥

विष्णुदेव के समान ही आपके पराक्रमीशौर्य शत्रुओं के विनाशक हैं । अन्तरिक्ष ने आपको कर्म-प्रवृत्त, तीक्ष्ण और

वायु के तेजस् से सम्पन्न किया है । आप अन्तरिक्ष में विशेष पराक्रम करें । हम अन्तरिक्षीय अनिष्टों को वहाँ से हटाते हैं । जो शत्रु हमसे द्वेष रखते हैं और हमें जिनसे द्वेष है, वह जीवित न रहें, प्राण उनका परित्याग करें ॥१०,५.२६॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जिवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.२७॥

आप शत्रुओं के संहार में विष्णु के पराक्रम तुल्य हैं, द्युलोक ने आपको कर्म प्रवृत्त करने के लिए तीक्ष्ण और सूर्य की तेजस्विता से सम्पन्न किया है । आप विशेष पराक्रम करें द्युलोक के अनिष्टों को हम वहाँ से हटाते हैं ।जो हमारे प्रति द्वेषयुक्त हैं और हम जिनके प्रति द्वेषयुक्त हैं, वह जीवन त्यागकर मृत्यु को प्राप्त हों, प्राण उन्हें छोड़ दें ॥१०,५.२७॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।

दिशो अनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.२८॥

आप शत्रुनाशक विष्णु के पराक्रम तुल्य हैं। दिशाओं में आपको कर्म प्रवृत्त, तेजस्वी, धारयुक्त और मन के तेज से परिपूर्ण किया है। आप दिशाओं में विशिष्ट पराक्रम करें । हम दिशाओं के अनिष्टों को हटाने हैं । विद्रोही, दुष्ट शत्रु जीवित न रह सकें और प्राणशक्ति उनका साथ छोड़ दे ॥१०,५.२८॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.२९॥

आप विष्णु के पराक्रमतुल्य और शत्रुसंहारक हैं । उप दिशाओं ने आपको तेजस्वी, कर्म प्रवृत्त, धारयुक्त (तीक्ष्ण) और वायु के तेज से परिपूर्ण किया है। आप अवान्तर दिशाओं में विशेष पराक्रम करें । अवान्तर के अनिष्टों को

हम वहाँ से हटाते हैं। हमारे दुष्टविद्वेषी शत्रु जीवित न रह पाएँ, प्राणशक्ति उनका परित्याग करे ॥१०,५.२९॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितो सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३०॥

आप विष्णु के पराक्रमतुल्य और शत्रुनाशक हैं। आप ऋग्वेद के ज्ञान से तेजस्वी और साम के तेजस् से युक्त हैं। आप क्रिज्ञान में विशेष पराक्रम करें और ऋचाओं (मन्त्रों) से हम उन (अनिष्टों) को हटाते हैं । जो हमसे द्वेष करने वाले और हमें जिनसे द्वेष है, ऐसे शत्रु जीवित न रहें प्राणतत्त्वं उनका परित्याग करे ॥१०,५.३०॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३१॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुनाशक और पराक्रमयुक्त हैं । आप यज्ञ से तेजस्वी और ज्ञानतेज से युक्त हैं। आप यज्ञक्षेत्र पर विक्रमण करें । हम उन्हें (विकारों को) यज्ञ से हटाते हैं । जो हमसे द्वेष रखने वाले और हम जिनके प्रति विद्वेष रखने वाले हैं, ऐसे शत्रु जीवित न रहकर प्राणों का परित्याग करें ॥१०,५.३१॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितो सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३२॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक और पराक्रमयुक्त हैं । आप औषधियों द्वारा तीक्ष्ण और सोम से तेजस्वी बने हैं। औषधियों पर आप विक्रमण करें। हम औषधियों से उन(दोष) को पृथक् करते हैं, जो हमारे प्रति द्वेषी हैं और हम जिनसे द्वेष रखते हैं, ऐसे शत्रुओं का प्राणान्त हो, वह जीवित न रह सकें ॥१०,५.३२॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।

अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३३॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक और पराक्रमयुक्त हैं। आप जल से तीक्ष्ण और वरुण के तेजस से युक्त हैं। आप जलप्रवाहों पर विशेष पराक्रम करें, जिससे जल से उन्हें (विकारों का) खदेड़ने में हम सक्षम हों, वह सभीशत्रु जीवित न बचें, उनका प्राणान्त हो , जो हमसे द्वेष रखते हैं अथवा हम जिनसे दुर्भाव रखते हैं ॥१०,५.३३॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३४॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुविनाशक और पराक्रमी हैं। आप कृषि से तेजस्वी और अन्न के तेजस् से युक्त हैं । आप कृषि पर विक्रमण करें, जिससे वहाँ से हम उन विकारों को हटाने में सक्षम हों । वह शत्रु प्राणों का परित्याग करें, जो

हमसे द्वेष रखते हों अथवा हम जिनसे विद्वेष रखते हैं ॥१०,५.३४॥

विस्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत्तं प्रानो जहातु ॥१०,५.३५॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक पराक्रमयुक्त हैं । आप प्राण से तेजस्वी और पुरुष के तेज से सम्पन्न हैं। आप प्राणों पर विशिष्ट पराक्रम करें, जिससे प्राणों से उन्हें दूर करने में हम सफल हों । वह जीवित न रहें, प्राण उन्हें छोड़ दें, जो हमसे द्वेष रखने वाले अथवा हम जिनके प्रति द्वेष रखने वाले हैं ॥१०,५.३५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१०,५.३६॥

विजित पदार्थ समूह और विदीर्ण करके लायह गए पदार्थ समूह हमारे हैं। हम सम्पूर्ण शत्रु सेना को वशीभूत कर रहे हैं । अमुक गोत्र के, अमुकी माता के पुत्र, जो हमारे शत्रु हैं, उनके वर्चस्व, तेजस्, प्राण और आयु को हम भली प्रकार घेरते हैं, इस प्रकार इन्हें नीचे की ओर धकेलते हैं ॥१०,५.३६॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यछतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥१०,५.३७॥

दक्षिण दिशा की ओर विस्तारयुक्त सूर्य द्वारा तय किए गए मार्ग का हम अनुगमन करते हैं। दक्षिण दिशा हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से युक्त करे ॥१०,५.३७॥

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविणं यछन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥१०,५.३८॥

हम देदीप्यमान दिशाओं में गमन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस प्रदान करें ॥१०,५.३८॥

सप्तऋषीन् अभ्यावर्ते ।
ते मे द्रविणं यछन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥१०,५.३९॥

हम सप्तर्षियों के सम्मुख उपस्थित होकर उनसे ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस की कामना करते हैं ॥१०,५.३९॥
ब्रह्माभ्यावर्ते ।
तन् मे द्रविणं यछन्तु तन् मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥१०,५.४०॥

हम मंत्रशक्ति के सम्मुख प्रस्तुत होकर उनसे ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज की प्रार्थना करते हैं ॥१०,५.४०॥
ब्राह्मणामभ्यावर्ते ।
ते मे द्रविणं यछन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥१०,५.४१॥

हम ज्ञाननिष्ठों के अनुगामी होकर चलते हैं, वह हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से युक्त करें ॥१०,५.४१॥
यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै ।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥१०,५.४२॥

हम जिन (दुष्टों को) खोजते हैं, उन्हें प्राण घातक हथियारों से ढंकते हैं और परमेश्वर के खुले अग्निरूप मुख में मंत्र के प्रभाव से उन्हें धकेलते हैं ॥१०,५.४२॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी ॥१०,५.४३॥

समिधारूप यह हथियार शत्रुओं को वैश्वानर अग्नि की दाढ़ों में समर्पित करे । ज्योतिष्मती, शत्रु-पराभव करने वाली, यह आहुतियाँ शत्रुओं का भक्षण कर डालें ॥१०,५.४३॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।
सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥१०,५.४४॥

हे राजा वरुण के बन्धनरूप मंत्र ! आप अमुक गोत्र के, अमुकी माता के पुत्र के लिए अन्न और प्राण के अवरोधक बनें ॥१०,५.४४॥

यत्ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयछ प्रजापते ॥१०,५.४५॥

हे पृथ्वी के अधिष्ठाता प्रजापतिदेव ! आपका जो अन्न पृथ्वी के आश्रित है, उनके सारतत्त्व को हमारे लिए प्रदान करें ॥१०,५.४५॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वान् अग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१०,५.४६॥

दिव्य जल-प्रवाहों को हमने संगृहीत किया है, उनसे हम स्वयं को सुसंगत करते हैं। हे अग्निदेव ! जल सहित आपके समीप उपस्थित हो रहे हैं, अतएव आप हमें तेजस्विता से युक्त करें ॥१०,५.४६॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥१०,५.४७॥

हे अग्निदेव ! आप हमें तेजस्विता, सुसन्तति और आयुष्य से सम्पन्न करें । देव शक्तियाँ हमारे इस अभिप्राय को समझें, इन्द्रदेव ऋषियों के साथ हमारे अभीष्ट भावों को जानें ॥१०,५.४७॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपतो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदयह यातुधानान्
॥१०,५.४८॥

हे अग्निदेव ! जो वक्ता वाणी का दुरुपयोग करते हैं, जो मिलकर शापादि देते हैं, ऐसे राक्षसों के हृदयों को उन बाणों से बांध डालें, जो मन्यु के कारण मन से प्रकट होते हैं ॥१०,५.४८॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवां छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि
॥१०,५.४९॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तप से राक्षसों को दूर भगा दें, उन्हें बलपूर्वक दूर कर दें । अपनी ज्वाला से उन मूढ़ों को दूर फेक दें । दूसरों के प्राणों का शोषण करके तृप्त होने वालों को शोकातुर करके भगा दें ॥१०,५.४९॥

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।

सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन् मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१०,५.५०॥

हम मन्त्रशक्ति के प्रयोक्ता इन शत्रुओं के सिर को फोड़ने के लिए 'चतुर्भुष्टि' जलवज़ का प्रहार करते हैं। यह वज्रास इनके सभी अङ्ग- अवयवों को काट डालें। सभी देवगण भी इस सम्बन्ध में हमें अनुकूल (उचित परामर्श प्रदान करें ॥१०,५.५०॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ६- मणिबन्धन सूक्त

वनस्पतिफला मणि का वर्णन तथा अग्नि का आह्वान

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः ।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥१०,६.१॥

हृदय में दुर्भाव रखने वाले शत्रुओं का सिर (या उनके विचारों को) हम अपने ओज से छिन्न-भिन्न करते हैं ॥१०,६.१॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद्रसेन सह वर्चसा ॥१०,६.२॥

मंथन द्वारा रस से परिपूर्ण होकर, यह मणि तेज के साथ हमारे निकट आ गई है । फाल से उत्पन्न होने वाली, यह मणि कवच के समान हमारी संरक्षक होगी ॥२॥

यत्त्वा शिक्कः परावधीत्तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्मज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥१०,६.३॥

आपको कुशल कारीगर (शिक्क ने काटा है और तक्षक (बढ़ई) हाथ में शस्त्र लेकर आपको गढ़ते हैं। आप स्वच्छ (उपकरण) को जीवनदायी शुद्ध जल से पवित्र बनाती हैं ॥१०,६.३॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥१०,६.४॥

यह हिरण्यस्रक् (सुवर्ण मालायुक्त) मणि श्रद्धा-भक्ति और यज्ञ से प्रभावशाली बनती हुई अतिथि के समान हमारे भवन में वास करे ॥१०,६.४॥

तस्मै घृतं सुरं मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥१०,६.५॥

हम इस मणि के लिए घी, तीक्ष्ण औषधिरस, शहद और अन्न समर्पित करते हैं। पिता द्वारा पुत्रों के हित साधन की तरह, यह मणि हमारे लिए परम कल्याणकारी हो । देवताओं के पास से बार-बार आकर यह मणि हमारे लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनाए ॥१०,६.५॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं कधिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.६॥

जिस घृत के समान पौष्टिक तत्त्वों को देने वाली और प्रचण्ड-प्रभावयुक्त खदिर फाल से उत्पन्न मणि को बृहस्पतिदेव ने बल- वृद्धि हेतु धारण किया, उसे अग्निदेव ने अपने शरीर पर बँधवाया था। अग्नि के लिए इस मणि ने नित्य प्रति बार-बार घृत (सार, अंश, तेज) का दोहन किया। उस मणि सामर्थ्य से आप शत्रुओं का हनन करें ॥१०,६.६॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं कधिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।

सो अस्मै बलमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.७॥

जिस घृततुल्य पौष्टिक पदार्थों को देने वाली और प्रचण्ड फालमणि को बृहस्पति देव ने बल प्राप्ति हेतु धारण किया, इन्द्रदेव ने उसी को ओज और वीर्य प्राप्ति हेतु प्राप्त किया। इन्द्रदेव के लिए यह मणि नित्यप्रति बार-बार बलवर्द्धक तत्त्वों को प्रस्तुत करे । उस मणि की सामर्थ्य से आप शत्रुओं का संहार करें ॥१०,६.७॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं कधिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.८॥

जिस घृत से परिपूर्ण और उग्रपराक्रमी फालमणि को बृहस्पतिदेव ने ओजस् वृद्धि हेतु धारण किया था। सोमदेव ने उसी को महिमायुक्त श्रवणशक्ति और दृष्टि-सामर्थ्य प्राप्ति हेतु धारण करवाया था। यह मणि सोमदेव के लिए

नित्य नवीन वर्चस् (तेज) प्रदान करती है। उस मणि द्वारा हे मणि धारणकर्ता ! आप शत्रुओं का संहार करें ॥१०,६.८॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद्दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.९॥

घृत से परिपूर्ण और प्रचण्ड पराक्रमशाली, जिस फालमणि को बृहस्पतिदेव ने ओजस् प्राप्ति के लिए धारण किया था। सूर्यदेव ने उसे बँधवाकर समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की थी। वह मणि सूर्यदेव को नित्य-नवीन ऐश्वर्य प्रदान करती रहे । ऐसी मणि द्वारा हे मणिधारणकर्ता ! आप अनिष्टकारक शत्रुओं का विनाश करें ॥१०,६.९॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.१०॥

बृहस्पतिदेव ने जिस घृत से परिपूर्ण शत्रुओं की उग्ररूपा फालमणि को बलवृद्धि के लिए धारण किया था, उसी मणि को बाँधकर चन्द्रदेव ने असुरों और दानवों के स्वर्णिम नगरों को अपने अधिकार क्षेत्र में किया था। यह मणि चन्द्रदेव को नित्य-नवीन श्री-सम्पदा प्रदान करती रहती है। उसी मणि द्वारा आप भी विध्वंसक तत्वोंका नाश करें ॥१०,६.१०॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.११॥

बृहस्पतिदेव ने जिस फालमणि को वायु की गतिशीलता के लिए धारण किया था, वह मणि नित्यप्रति बार-बार वायुदेव को गतिशील बनाती रहती है । उस मणि द्वारा आप शत्रुओं का विनाश करें ॥१०,६.११॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।

स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.१२॥

बृहस्पतिदेव ने जिस मणि को वायु की गतिशीलता हेतु धारण किया था, उस मणि से अश्वनीकुमार कृषि की सुरक्षा करते हैं। वह अश्विनीकुमारों को नित्यप्रति बार-बार जल प्रदान करती है । हे मणि धारणकर्ता ! आप इससे विध्वंसक तत्वों का संहार करें ॥१०,६.१२॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं बिभ्रत्सविता मणिं तेनेदमजयत्स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.१३॥

बृहस्पतिदेव ने जिस मणि को वायु की गतिशीलता हेतु बाँधा था, सवितादेव ने उस मणि को बाँधकर स्वर्ग पर विजय प्राप्त की । सवितादेव के लिए यह मणि प्रतिदिन बार-बार शुभ सत्य-वाणी उच्चारण करती है । हे मणिधारणकर्ता ! आप इससे विध्वंसक तत्त्वों का संहार करें ॥१०,६.१३॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।
स आभ्योऽमृतमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि
॥१०,६.१४॥

जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने वायु की गतिशीलता हेतु बाँधा था, उस मणि को धारण करके जल सदैव अक्षयरूप से दौड़ता रहता है। इन जल-प्रवाहों के निमित्त यह मणि नित्यप्रति अत्यधिक मात्रा में अमृत ही देती रहती है । हे मणिधारणकर्ता ! आप इस मणि द्वारा अनिष्टकारक तत्वों को संहार करें ॥१०,६.१४॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि
॥१०,६.१५॥

जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने वायु की तीव्रता हेतु बाँधा था, उस सुखदायी मणि को राजा वरुण ने बँधवाया था।

वरुणदेव के निमित्त यह मणि नित्यप्रति अधिक से अधिक सत्य ही प्रदान करती हैं। हे मणि धारणकर्ता ! आप इस मणि द्वारा शत्रुओं को विनष्ट करें ॥१०,६.१५॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वांल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि
॥१०,६.१६॥

जिस मणि को वायु की तीव्रता हेतु बृहस्पतिदेव ने धारण किया, इसी मणि को धारण करके देवों ने युद्ध द्वारा सम्पूर्ण लोकों को अपने आधिपत्य में किया था। देवों के लिए यह मणि नित्य बार-बार विजय प्राप्त करती है । उस मणि द्वारा आप शत्रुओं का संहार करें ॥१०,६.१६॥
यमबध्नाद्बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शम्भुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद्दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि
॥१०,६.१७॥

जिस मणि.को बृहस्पतिदेव ने वायु की तीव्रता हेतु धारण किया था, उस सुखदायी मणि को देवों ने भी धारण किया था। देवों के लिए यह मणि प्रतिदिन बार-बार विश्वसुख प्रदान करती रहती है। ऐसी मणि के द्वाराआप शत्रुओं का विनाश करें ॥१०,६.१७॥

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥१०,६.१८॥

ऋतुओं और ऋतु-अवयव (महीनों) ने इस मणि को धारण किया था, इसको धारण करके संवत्सर सभी प्राणियों का संरक्षण करते हैं ॥१०,६.१८॥

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधरामकः ॥१०,६.१९॥

अन्तर्दशाओं और प्रदिशाओं ने इस मणि को धारण किया था; प्रजापालक परमेश्वर द्वारा निर्मित यह मणि हमारे शत्रुओं को दुर्गति में धकेले ॥१०,६.१९॥

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.२०॥

अथर्ववेत्ताओं और आथर्वणिकों (अथर्व के मन्त्र समूह) ने इस मणि को धारण किया था, उससे शक्तिशाली हुए अंगिराओं ने शत्रु-नगरों को तोड़ डाला। ऐसी मणि द्वारा आप शत्रुओं का संहार करें ॥१०,६.२०॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत्।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०,६.२१॥

उस मणि को धारण करके धाता (विधाता) प्राणियों की रचना करने में समर्थ हुए, उस मणि द्वारा आप विध्वंसक तत्वों को विनष्ट करें ॥१०,६.२१॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद्रसेन सह वर्चसा ॥१०,६.२२॥

असुर विनाशक जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने देवशक्तियों के लिए धारण किया था, वह मणि रस और तेज के साथ हमारे समीप पहुँच चुकी है ॥१०,६.२२॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत्सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥१०,६.२३॥

जिस असुर संहारक मणि को देवों के निमित्त बृहस्पतिदेव ने धारण किया। वह मणि गौ (गौओं या किरणों), अजाओं (अजन्मी शक्तियों), पोषक अन्न तथा प्रज्ञा के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥१०,६.२३॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत्सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥१०,६.२४॥

बृहस्पतिदेव ने असुर संहारक जिस मणि को देवों के निमित्त बाँधा था, वह मणि जौ, चावल और ऐश्वर्य के साथ हमारे समीप पहुँच रही है ॥१०,६.२४॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन् मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह
॥१०,६.२५॥

देवों के निमित्त जिस असुर संहारक मणि को बृहस्पतिदेव ने धारण किया था, वह मणि घी की धाराओं, शहद, अन्न के साथ हमारे पास पहुँच रही है ॥१०,६.२५॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह
॥१०,६.२६॥

देवों के निमित्त बृहस्पतिदेव ने जिस राक्षस नाशक मणि को धारण किया था, ऐसी मणि अन्न, बल, धन और सम्पत्ति के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥१०,६.२६॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत्तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह
॥१०,६.२७॥

देवों के लिए बृहस्पतिदेव ने जिस असुर नाशक मणि को धारण किया था। तेज, दीप्ति, यश और कीर्ति के साथ यह मणि हमारे समीप आ गई है ॥१०,६.२७॥

यमबध्नाद्बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत्सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥१०,६.२८॥

देवों के लिए बृहस्पतिदेव ने असुर विनाशक जिस मणि को धारण किया था, यह मणि सभी ऐश्वर्यों के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥१०,६.२८॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टयह ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥१०,६.२९॥

यह मणि शत्रुनाशक, क्षात्रतेज को बढ़ाने वाली और शत्रुओं को पराभूत करने वाली है। इसे देवगण पोषण-क्षमता के लिए हमें प्रदान करें ॥१०,६.२९॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।

असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरामकः ॥१०,६.३०॥

हम इस कल्याणकारी मणि को ज्ञान और तेज के साथ धारण करते हैं । यह मणि शत्रुरहित और शत्रुसंहारक है । हे मणे ! आप हमारे वैरियों को दुर्दशाग्रस्त करें ॥१०,६.३०॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥१०,६.३१॥

देवों द्वारा उत्पादित यह मणि हमें शत्रुओं से उत्तम स्थिति में रखे । जिस मणि के दूध और जल को तीनों लोक उपभोग करते हैं, इस प्रकार की यह मणि श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा धारण की जाए ॥१०,६.३१॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥१०,६.३२॥

देव, मनुष्य और पितर जिस मणि पर सदैव निर्भर रहते हैं, वह हमें उत्तम स्थान की ओर अग्रसर करे ॥१०,६.३२॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥१०,६.३३॥

फाल द्वारा कुरेदे जाने पर जिस प्रकार पृथ्वी में बोया गया बीज उगता है, उसी प्रकार यह मणि हमारे लिए सन्तान, पशु और खाद्यान्न पैदा करे ॥१०,६.३३॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात्॥१०,६.३४॥

है यज्ञवर्द्धक मणे ! आप मंगलकारिणी को जिसके निमित्त हम धारण कर रहे हैं, सैकड़ों तरह के अनुदान देने वाली हे मणे ! आप उस प्रयोजन को श्रेष्ठता की ओर बढ़ाएँ ॥१०,६.३४॥

एतमिध्मं समाहितं जुषणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विधेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥१०,६.३५॥

हे अग्ने ! आप भली प्रकार स्थापित किए गए ईंधन का सेवन करते हुए, आहुतियों से प्रदीप्त हों । ज्ञान (मन्त्र सामर्थ्य) से प्रदीप्त उन सर्वज्ञ अग्निदेव से हम सद्‌बुद्धि, कल्याण, सन्तान, दर्शनशक्ति और पशु प्राप्त करें ॥१०,६.३५॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ७ – सर्वाधारवर्णन सूक्त

अंगों की महत्ता का वर्णन, जगद का आधार कौन है तथा श्रेष्ठ परमात्मा को नमस्कार

कस्मिन्न् अङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्न् अङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्न् अङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१०,७.१॥

इस (स्कम्भ-जीवन धारक देह) के किस अंग में तप:शक्ति रहती है ?किस अंग में त(यज्ञ रहता है ? इसकी श्रद्धा कहाँ टिकती और व्रत कहाँ स्थित होते हैं? इसके किस अंग में सत्य का निवास है ? ॥१०,७.१॥

कस्मादङ्गाद्दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात्पवते मातरिश्व ।
कस्मादङ्गाद्वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥१०,७.२॥

इसके किस अंग में अग्नि प्रदीप्त होती है ? किस अंग से वायु प्रवाहित होती है? उस महान् स्कम्भ के किस अंग का परिमाप करता हुआ चन्द्रमा प्रकाशित होता है ? ॥१०,७.२॥

कस्मिन्न् अङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्न् अङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।
कस्मिन्न् अङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्न् अङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥१०,७.३॥

इसके किस अङ्ग में भूमि का निवास है ? किस अंग में अन्तरिक्ष रहता है ? किस अंग में सुरक्षित द्युलोक रहता है तथा किस अंग में उच्चतर द्युलोक का उत्तर भाग रहता है ? ॥१०,७.३॥

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.४॥

ऊपर को उठती हुई अग्नि कहाँ जाने की इच्छा करती है ? वायु कहाँ जाने की इच्छा करती हुई बहती है ? उस स्कम्भ को बताओ, वह कौन सा है, जहाँ जाने की इच्छा करते हुए प्राणी आवर्तन के चक्कर में पड़े हैं? ॥१०,७.४॥

क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः
॥१०,७.५॥

संवत्सर के साथ मिलते हुए पक्ष और मास कहाँ जाते हैं? जहाँ यह ऋतुएँ और उनमें उत्पन्न पदार्थ जाते हैं, उस स्कम्भ को बताओ कि वह कौन सा है? ॥१०,७.५॥

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः
॥१०,७.६॥

विरुद्ध रूप वाली युवतियाँ अर्थात् दिनप्रभा एवं रात्रि मिलकर दौड़ती सी कहाँ जाती हैं? बताओ वह कौन सा

स्कम्भ है, जहाँ पाने की इच्छा वाला यह जल जा रहा है ? ॥१०,७.६॥

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वामधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.७॥

प्रजापति ने जिस पर आधारित होकर समस्त लोकों को धारण किया है, बताओ वह स्कम्भ कौन सा है ? ॥१०,७.७॥

यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन् न प्राविशत्कियत्तद्बभूव ॥१०,७.८॥

प्रजापति ने जो श्रेष्ठ (परम, निकृष्ट (अव) तथा मध्यम विश्वरूप की रचना की है, उसमें स्कम्भ कितने अंश प्रवेश किया है तथा वह अंश कितना है, जो प्रविष्ट नहीं हुआ ? ॥१०,७.८॥

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद्भविष्यदन्वाशयहऽस्य ।

एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥१०,७.९॥

यह सर्वाधार (स्कम्भ) भूतकाल में कितने अंश में प्रविष्ट हुआ था, भविष्य में कितने अंश से शयन कर रहा है तथा जो अपने एक अंग को हजारों-प्रकारों में प्रकट कर लेता है, वह वर्तमान में कितने अंश से प्रविष्ट है ? ॥१०,७.९॥

यत्र लोकाश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१०॥

जिसमें सब लोक, कोश, ब्राह्मी अप् (मूल सक्रिय तत्त्व) निवास करते हैं, ऐसा लोग जानते हैं। सत् और असत् जिसके अन्दर हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ॥१०,७.१०॥

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.११॥

उस स्कम्भ को बताएँ, जहाँ तप तथा व्रत करके श्रेष्ठ पुरुष प्रतिष्ठित होते हैं और जहाँ तु, श्रद्धा तथा अप् ब्रह्म समाहित हैं ? ॥१०,७.११॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्न् अध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१२॥

जिसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक स्थित हैं तथा अग्नि, सूर्य, चन्द्र एवं वायु जिसके आश्रय में रहते हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ? ॥१०,७.१२॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१३॥

जिस स्कम्भ के अंग में समस्त तैंतीस देव स्थिर हैं, उसे बताएँ ? ॥१०,७.१३॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्महीं ।

एकर्षिर्यस्मिन्न् आर्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१४॥

जिसमें प्रथम अषि तथा ऋक्, साम, यजु तथा मही (महती विद्या विद्यमान हैं, जिसमें मुख्यरूप से एक ही अंष (अथर्वा) समर्पित हैं (अर्थात् अथर्ववेद प्रकट हुआ, उस स्कम्भ के बारे में हमें बतलाएँ ॥१०,७.१४॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१५॥

वह स्कम्भ कौन सा है? जहाँ पुरुष,, अमृत और मृत्यु भली प्रकार समाहित हैं, समुद्र जिसकी नाड़ियाँ हैं ॥१०,७.१५॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१६॥

उस स्कम्भ को बताएँ, जिसकी नाड़ियाँ पहली चारों दिशाएँ हैं तथा यज्ञ जहाँ तक पहुँचता है ॥१०,७.१६॥

यह पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं यह ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१०,७.१७॥

जो पुरुष में ब्रह्म को जानते हैं, वह परमेष्ठी को जानते हैं । जो परमेष्ठी, प्रजापति तथा ज्येष्ठ ब्राह्मण को जानते हैं, वह स्कम्भ को जानते हैं ॥१०,७.१७॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१८॥

जिसका सिर वैश्वानर है और नेत्र अंगिरा वंशी हुए थे । 'यातु' जिसके अंग हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ॥१०,७.१८॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।

विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.१९॥

वह कौन सा स्कम्भ है, बताएँ? जिसके मुख को ब्रह्म, जिह्वा को मधुकशा तथा 'ऐन' (दुग्धाशय) स्तन को विराट् कहते हैं ? ॥१०,७.१९॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.२०॥

उस स्कम्भ के बारे में बताएँ? जिससे ऋचाएँ प्रकट हुई, यजुर्वेद के मन्त्र प्रकट हुए, जिसके लोम साम हैं। और अथर्व जिसका मुख है ॥१०,७.२०॥

असच्चाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन् मन्यन्तेऽवरे यह ते शाखामुपासते ॥१०,७.२१॥

असत् से उत्पन्न हुई एक प्रतिष्ठित शाखा को मनुष्यगण परमश्रेष्ठ मानते हैं तथा जो दूसरे लोग हैं, वह सत्रूप से उसे ही स्वीकार करके उसकी उपासना करते हैं ॥१०,७.२१॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.२२॥

उस स्कम्भ के बारे में बताएँ? जिसमें सूर्य, रुद्र तथा वसु निवास करते हैं और जिसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् सहित समस्त लोक समाहित हैं ॥१०,७.२२॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥१०,७.२३॥

तैंतीस देव जिसकी एवं जिसके निधि की रक्षा करते हैं, उसको एवं उसकी उस निधि को कौन जानता है ? ॥१०,७.२३॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।

यो वै तान् विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥१०,७.२४॥

ब्रह्मवेत्ता जहाँ ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं तथा जो उनको निश्चयपूर्वक प्रत्यक्ष जानता है, वह जानने वाला ब्रह्मा हो सकता है ॥१०,७.२४॥

बृहन्तो नाम ते देवा यहऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥१०,७.२५॥

जो असत् (अर्थात् प्रकृति) से उत्पन्न हुए हैं, वह बृहत् नाम के देव हैं, वह स्कम्भ के अंग हैं। लोग उन्हें असत् परन्तु श्रेष्ठ कहते हैं ॥१०,७.२५॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥१०,७.२६॥

जहाँ स्कम्भ (सर्वाधार-आत्मा) ने निर्माण के क्रम में पुराण (तत्त्व) को ही विवर्तित किया, स्कम्भ के उस अंग को पुराण करके हीं जानते हैं ॥१०,७.२६॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवान् एके ब्रहम्विदो विदुः ॥१०,७.२७॥

तैंतीस देवता जिसके शरीर के अंग रूप में शोभा पाते हैं, उन तैंतीस देवताओं को केवल ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं ॥१०,७.२७॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥१०,७.२८॥

(जिस परम हिरण्यगर्भ को लोग अवर्णनीय जानते हैं, उस हिरण्यगर्भ को पहले स्कम्भ ने ही इस लोक में प्रसिञ्चित किया ॥१०,७.२८॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥१०,७.२९॥

स्कम्भ में लोक, तप तथा त समाहित हैं । हे स्कम्भ ! जो तुम्हें प्रत्यक्ष जानता है, वह जानता है कि इन्द्र (आत्मा) में ही सब समाया है ॥१०,७.२९॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१०,७.३०॥

इन्द्र में सब लोक, तप एवं ऋत समाहित हैं । हे इन्द्रदेव ! मैं आपको प्रत्यक्ष जानता हूँ । स्कम्भ में ही सब समाया है ॥१०,७.३०॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान् नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥१०,७.३१॥

सूर्योदय से पहले, उषाकाल से भी पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में जो नाम रूप ईश्वर को, इस (सर्वाधार) नाम से पुकारता है (अर्थात् जप करता है), वह आत्मा उस स्वराज्य को प्राप्त कर लेती है, जिससे श्रेष्ठ कोई भूत (जगत् का पदार्थ) नहीं है तथा जो पहले (अज) अजन्मा था ॥१०,७.३१॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१०,७.३२॥

भूमि जिसकी प्रमा (पाद मूल के समान) है, अन्तरिक्ष उदर है तथा द्युलोक जिसका सिर है, उस ब्रह्म को नमस्कार है ॥१०,७.३२॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१०,७.३३॥

सूर्य तथा पुनः-पुनः नया होने वाला (कलाओं के आधार पर) चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं। अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया, उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ॥१०,७.३३॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१०,७.३४॥

प्राण और अपान जिसके वायु हैं, अंगिरस् जिसकी आँखें हैं। जिसकी उत्कृष्ट ज्ञापक दिशाएँ हैं, उस ज्येष्ठ (सर्वश्रेष्ठ) ब्रह्म को नमस्कार है ॥१०,७.३४॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥१०,७.३५॥

द्यावा-पृथिवी एवं विशाल अन्तरिक्ष को स्कम्भ ने धारण कर रखा है। छह उर्वियों और प्रदिशाओं को स्कम्भ ने ही धारण कर रखा है और स्कम्भ ही इस विश्व में प्रविष्ट है ॥१०,७.३५॥

यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१०,७.३६॥

जो श्रमपूर्वक किए गए तप द्वारा प्रकट होता है तथा समस्त लोकों को व्याप्त किए हुए है, जिसने केवल सोम को ही प्रवाहित किया है, उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ॥१०,७.३६॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥१०,७.३७॥

वायु क्यों स्थिर नहीं रहती, मन क्यों नहीं रमता तथा जल किस सत्य को पाने की इच्छा से प्रवाहित है ? ॥१०,७.३७॥

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥१०,७.३८॥

इस विश्व में एक परम पूज्य है, जो सलिल पृष्ठ पर कान्तिवान् होता है, जिसे तपः द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । जैसे वृक्ष के तने पर शाखाएँ आधारित रहती हैं, वैसे ही समस्त देव उनका आश्रय लेते हैं ॥१०,७.३८॥

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयछन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०,७.३९॥

देवता जिनके लिए हाथ, पैर, वाणी, कान एवं नेत्रों से सतत बलि (आहुति) प्रदान करते रहते हैं। देव जिनके विमति

शरीर में अमित उपहार प्रदान करते रहते हैं। उस स्कम्भ को बताएँ, वह कौन सा स्कम्भ है ? ॥१०,७.३९॥

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥१०,७.४०॥

(जो स्कम्भ को जान लेता है, उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। वह पाप से निवृत्त हो जाता है। जो तीन ज्योतियाँ प्रजापति में होती हैं, वह उसे प्राप्त हो जाती हैं ॥१०,७.४०॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥१०,७.४१॥

जो सलिल (अन्तरिक्ष) में स्थित तेजोमय वेतस् (संसार) को जानता है, वहीं गुह्य प्रजापति हैं ॥१०,७.४१॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥१०,७.४२॥

दो विरुद्ध रूपवाली युवतियाँ (उषा और रात्रि) हैं। वह छह खुटियों (छह तुओं) वाले विश्वरूपा जाल को बुन रही हैं । एक, तन्तुओं (किरणों) को फैलाती है तथा अन्य दूसरी उन्हें अपने में धारणकर (समेट) लेती है । यह दोनों न तो विश्राम करती हैं और न इनका कार्य अन्त तक पहुँचता है ॥१०,७.४२॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।
पुमान् एनद्वयत्युद्गृणन्ति पुमान् एनद्वि जभाराधि नाके
॥१०,७.४३॥

नृत्य के समान श्रम करती हुई, उन दोनों युवतियों में कौन सी पहली है, हम यह नहीं जानते । इसको एक पुरुष बुनता है तथा दूसरा पुरुष उकेलता (तन्तुओं को उधेड़ता) है । इसको वह स्वर्ग में धारण करता है ॥१०,७.४३॥

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे
॥१०,७.४४॥

मयूखें (किरणें) ही द्युलोक को थामकर रखती हैं। साम (तालमेल के साथ चलने वाले दिव्य प्रवाह उस तन्तुजाल को बनाए हुए हैं ॥१०,७.४४॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ८- ज्येष्ठब्रह्मवर्णन सूक्त

ब्रह्म की स्तुति, बारह अरे तथा तीन नेमियां । परमात्मा संसार के मध्य स्थित है तथा आत्म तत्त्व एक है

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१०,८.१॥

जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल में सबके अधिष्ठाता हैं। जिनका केवल प्रकाशमय स्वरूप है, हम उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार करते हैं ॥१०,८.१॥

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन् निमिषच्च यत्॥१०,८.२॥

प्राणयुक्त और पलक झपकने वाला (अर्थात् सचेष्ट द्रष्टा) , सब आत्मा से युक्त जो यह सवाधार है, वही स्कम्भ, द्यौ और पृथ्वी को स्थिर किए है ॥१०,८.२॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश
॥१०,८.३॥

तीन प्रकार की प्रजाएँ (सात्त्विक, राजस् और तामस्) अत्यधिक आवागमन को प्राप्त होती हैं। उनसे भिन्न एक (सत्त्वगुणी प्रजा) सविता मण्डल में आश्रय लेती है। बड़ी (राजस्) चमकीले (यशस्वी लोकों में फैलती है। तथा तीसरी हरण (परिर्वतन) शील प्रजा या शक्तियाँ हरण करने वाले देवों के अधिकार में जाती हैं ॥१०,८.३॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला
यह ॥१०,८.४॥

बारह प्रधियाँ, एक चक्र और तीन नाभियों वाले उसको कौन जानता है? वहाँ तीन सौ साठ बँटे और उतनी ही कीलें हैं, जो अविचल हैं ॥१०,८.४॥

इदं सवितर्वि जानीहि षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिछन्ते य एषामेक एकजः ॥१०,८.५॥

हे सविता ! आप यह जानिए कि यहाँ छह यम (जोड़े) हैं, एक अकेला है, इनमें जो अकेला है, उसमें सब मिलने की इच्छा करते हैं ॥१०,८.५॥

आविः सन् निहितं गुहा जरन् नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥१०,८.६॥

प्रकाशवान् आत्मा इस देहरूप गुहा में विराजती है । जरत् (गतिशील) नामक महान् पद में यह सचेष्ट और प्राणयुक्त (आत्मा) प्रतिष्ठित है ॥१०,८.६॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तद्बभूव ॥१०,८.७॥

एक नाभि वाला एक चक्र, हजारों अक्षरों (अक्षय शक्तियों) वाला एक चक्र आगे एवं पीछे घूमता है, उसने अपने आधे

भाग से विश्व का निर्माण किया और जो शेष आधा भाग है, वह कहाँ है ? ॥१०,८.७॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥१०,८.८॥

इनमें जो पञ्चवाही (पाँच प्राणों से वहन की जाने वाली, आत्मा) है, वह प्रगति करती है या अन्त तक(परमात्मा तको पहुँचती है । जो घोड़े (वहनकर्ता) युक्त हैं, वह भली प्रकार वहन करते हैं। इसका न चलना तो दिखाई देता है; पर चलना नहीं दिखाई देता है, यह समीप होकर भी दूर तक है और दूर तक संचरित होकर भी समीप है ॥१०,८.८॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं यह अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥१०,८.९॥

तिरछे मुख वाला एवं ऊपर की ओर पैंदी वाला एक चमस् (पात्र) है। उसमें विश्वरूप यश निहित है। उसमें सात

अग्रेषिगण इस महान् शरीर की रक्षा हेतु विराजते है ॥१०,८.९॥

या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ्तायते तां त्वा पृछामि कतमा सा ऋचाम् ॥१०,८.१०॥

जो विश्व में योजित है; आगे भी योजित है, पीछे भी योजित है तथा सब ओर योजित हैं । ऋचाओं = ऐसी वह कौन सी ऋचा है, जिससे यज्ञ का विस्तार किया जाता है ? ॥१०,८.१०॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन् निमिषच्च यद्भुवत्।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ॥१०,८.११॥

जो कम्पन करता है, गति करता है (फिर भी) स्थिर रहता है, जो प्राण धारण करता है, प्राणरहित होता है, जो पलक झपकाता है तथा जिसकी सत्ता है, वह ही इस विश्व को,

पृथ्वी को धारण करता है, पुन: (प्रलयकाल में वह सब मिलकर एक हो जाता है ॥१०,८.११॥

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥१०,८.१२॥

अनेक रूपों में वह अनन्त ही प्रकटरूप से फैला है। इस अनन्त में ही ससीम समाया है और यह नि:सीम सब ससीम में समाया है । इसके भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के समस्त सम्बन्धों को जानता हुआ वह परमात्मा इस जगत् को चलाता है ॥१०,८.१२॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥१०,८.१३॥

वह, प्रजापति गर्भ (जगत्) के अन्दर अदृश्यरूप से विचरण करता हुआ अनेक रूपों में प्रकट होता हैं। वह अपने आधे

भाग से समस्त भुवनों को उत्पन्न करता है, जो इसका शेष आधा भाग है, वह ज्ञानमय पुरुष कौन सा है? ॥१०,८.१३॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१०,८.१४॥

भरे घड़े को ऊपर लाने वाला कोई कहार) होता है । इस घटनाक्रम को लोग आँखों से तो देखते हैं; किन्तु (विश्वघट का धारणकर्ता कौन है ?) मन से इस सबका बोध नहीं कर पाते ॥१०,८.१४॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥१०,८.१५॥

अपूर्ण एवं पूर्ण दोनों से ही परे यह पूजनीयदेव महान् विश्व-ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित उस (विराट्) के लिए राष्ट्र सेवक बलि (आहार आदि) प्रदान करते हैं ॥१०,८.१५॥

यतः सूर्यः उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।

तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥१०,८.१६॥

सूर्य जिससे उदित होता है और जिसमें ही अस्त हो जाता है, हम उसे ही ज्येष्ठ बह्म मानते हैं। उसका अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता ॥१०,८.१६॥

यह अर्वाङ्नध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्
॥१०,८.१७॥

जो प्राचीन, मध्य एवं वर्तमानकाल में स्थित इस सर्वज्ञानमय पुरुष का वर्णन करते हैं, वह आदित्य का ही वर्णन करते हैं। वह इससे द्वितीय अग्नि का वर्णन करते हैं तथा तीसरे त्रिवृत् हंस (तीन गुणों से आवृत आत्मा) का वर्णन करते हैं ॥१०,८.१७॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वान् उरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा
॥१०,८.१८॥

हजारों दिनों (के प्रयासों से इस हंस (बँधे जीव) के पंख (आवागमनरूपी) गिर जाते हैं, तब यह अपने मुक्त स्वरूप में स्थित हो जाता है । वह (मुक्तात्मा) समस्त देवताओं (दिव्यताओं) को हृदय में धारण करके, समस्त धामों को देखता हुआ (परमधाम को जाता है ॥१०,८.१८॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ्‌वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ्‌प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥१०,८.१९॥

जो सत्य के द्वारा ऊपर तपता है, ज्ञान के द्वारा इस निचले जगत् को देखता है (या प्रकाशित करता है) तथा प्राण द्वारा तिर्यक् जगत् को जीवन्त रखता है, उसमें ही ज्येष्ठ ब्रह्म रहता है ॥१०,८.१९॥

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद्ब्राह्मणं महत्१०,८.॥२०॥

जो (आत्म ज्ञानरूप) धन को मथने वाली उन दो (विद्या तथा अविद्या) अरणियों को जानता है । वह जानने वाला ज्येष्ठ ब्रह्म को जान सकता है ॥१०,८.२०॥

अपादग्रे समभवत्सो अग्रे स्वराभरत्।
चतुष्पाद्भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥१०,८.२१॥

प्रारम्भ में जब वह पादरहित था, तब वह इस समस्त जगत् अपने में धारण किए था। बाद में वह हीं चार पाद (जरायुज, अण्डज, उद्भिज तथा स्वेदज) वाला भोग्य बनता है और अन्त में (प्रलयकाल में) समस्त भोजनको निगल लेता है ॥१०,८.२१॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद्बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥१०,८.२२॥

भोग्य हुए (इन ज्येष्ठबह्म को) जो बहुत-सा अन्न (यज्ञीयप्रक्रिया द्वारा प्रदान करता है, वह सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त हुए, इस सनातनदेव की (ज्येष्ठब्रह्म की) ही उपासना करता है ॥१०,८.२२॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायहते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥१०,८.२३॥

उसे सनातन (पुरुष) कहते हैं, फिर आज भी वह नया है, जैसे कि दिन और रात्रि अन्योन्याश्रितरूप से नित-नयह उत्पन्न होते हुए भी सनातन हैं ॥१०,८.२३॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचतेष एतत्॥१०,८.२४॥

सैकड़ों, हजारों, लाखों ही नहीं असंख्य स्वत्व (आत्मतत्त्व) इसमें (ज्येष्ठब्रह्म में) निविष्ट हैं। वह इसमें ही लीन हो जाते हैं। यह देव ही साक्षीरूप से सबमें प्रकाशित रहता है ॥१०,८.२४॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥१०,८.२५॥

एक बाल से भी सूक्ष्म (अर्थात् सूक्ष्मतम्-जड़) है और एक होते हुए भी दिखाई नहीं देता (अर्थात् चेतन) हैं । जो

दिव्यशक्ति इन दोनों का आलिंगन करती है, वह चेतन आद्यशक्ति मेरा प्रिय है ॥१०,८.२५॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शयह स यश्चकार जजार सः ॥१०,८.२६॥

मनुष्य के घर में (अर्थात् देह में, यह कल्याणकारी चित्शक्ति अजर और अमररूप में लेटती है (अर्थात् निवास करती है) । जो इसके लिए उपासना करता है, वह इस लोक में पूजा (सम्मान) पाता है ॥१०,८.२६॥

त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि त्वं कुमार उत वा कुमारी॥
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥१०,८.२७॥

तुम्हीं स्त्री हो, तुम्हीं पुरुष, तुम्हीं युवक एवं तुम्हीं युवती हो । वृद्ध होने पर तुम्हीं दण्ड लेकर चलते हो अर्थात् तुम्हीं नानाप्रकार के रूपों में प्रकट होते हो ॥१०,८.२७॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥१०,८.२८॥

इनके पिता और पुत्र तथा ज्येष्ठ और कनिष्ठ एक ही देव हैं, जो मन में प्रविष्ट हैं। वहीं पहले भी उत्पन्न हुआ था तथा वही गर्भ में आता रहता है ॥१०,८.२८॥

पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते ॥१०,८.२९॥

पूर्ण (परमेश्वर) से पूर्ण (जगत्) उत्पन्न होता है । पूर्ण से पूर्ण सींचा जाता है। आज (बोध हो जाने पर) हम जानते हैं कि यह कहाँ से सींचा जाता है ॥१०,८.२९॥

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥१०,८.३०॥

यह सनातचशक्ति, सनातनकाल में विद्यमान है। यह पुरातनशक्ति ही समस्त संसार में व्याप्त रही है । ऐसी यह

महान् देवी उषा को आभामयी बनाती है । वह अकेले-अकेले प्रत्येक प्राणी को देख रही है ॥१०,८.३०॥

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥१०,८.३१॥

"अवि" (रक्षण करने वाली प्रकृति देवी ऋत के द्वारा ढंकी (आच्छादित) है । उसी के रूप से यह वृक्ष एवं पत्ते हरे हुए हैं ॥१०,८.३१॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥१०,८.३२॥

यह पास में आए हुए (शरणागत) को नहीं छोड़ता है और यह समीप स्थित को भी नहीं देखता है । इस देव के काव्य (वेदज्ञान) को देखो, जो न कभी मरता है और न ही जीर्ण होता है ॥१०,८.३२॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥१०,८.३३॥

जिसके पूर्व कोई नहीं था, उन (परमेश्वर) से प्रेरित वचन (वेद वाणियाँ यथार्थ का वर्णन करती हुई, जहाँ तक जाती हैं, वह ज्येष्ठ ब्रह्म कहलाता है ॥१०,८.३३॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन् मायया हितम् ॥१०,८.३४॥

जिस प्रकार अरे (चक्र की) उसकी नाभि में आश्रित होते हैं, उसी प्रकार देवता एवं मनुष्य उसमें भाश्रित हैं ।अप्-तत्त्व उसके विषय में हमें बताए, जो माया द्वारा आच्छादित रहता है ॥१०,८.३४॥

यहभिर्वात इषितः प्रवाति यह ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥१०,८.३५॥

जिनके द्वारा प्रेरित होकर वायु प्रवाहित होती हैं, जो मिली जुली पाँचों दिशाओं को अस्तित्व प्रदान करते हैं, जो देवता

आहुतियों को अधिक मानते हैं, वह अप् प्रवाहों के नेता (नेतृत्व करने वाले) कौन हैं? ॥१०,८.३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥१०,८.३६॥

एक वहीं इस पृथ्वी को आच्छादित करता है, एक वहीं अन्तरिक्ष के चारों ओर स्थित है । वह धारण करने वाला ही द्युलोक को धारण करता है। कुछ देव समस्त दिशाओं की रक्षा करते हैं ॥१०,८.३६॥
यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्न् ओताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्याद्स विद्याद्ब्राह्मणं महत्॥१०,८.३७॥

जिसमें यह समस्त प्रजाएँ ओत-प्रोत है, जो विस्तृत इस (प्रकृतिरूपी) सूत्र को एवं इसके कारणरूप सूत्र को भी जानता है । वास्तव में वह ज्येष्ठ ब्रह्म को जानता है ॥१०,८.३७॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्न् ओताः प्रजा इमाः ।

सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद्ब्राह्मणं महद्॥१०,८.३८॥

जिसमें यह समस्त प्रजाएँ ओत-प्रोत है, मैं उस विस्तृत (प्रकृतिरूपी) सूत्र को एवं उसके भी सूत्र (कारण) को जानता हूँ, वहीं ज्येष्ठबह्म है ॥१०,८.३८॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत्प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्न् एकपत्नीः परस्तात्केवासीन् मातरिश्वा तदानीम्
॥१०,८.३९॥

जब (प्रलयकाल में) द्यावा-पृथिवी के मध्य समस्त संसार को भस्म करने वाले अग्निदेव व्याप्त होते हैं, उस समय एक पत्नी (आज्ञा का पालन करने वाली एक मात्र संवरणशक्ति) ही रह जाती है, उस समय मातरिश्वा (वायु कहाँ रहता है ? ॥१०,८.३९॥

अप्स्वासीन् मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्॥
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश
॥१०,८.४०॥

वायु उस समय अप् तत्त्व (सृष्टि के उत्पादक मूल सक्रिय तत्त्व) में प्रविष्ट रहता है तथा अन्य देव भी उसी में प्रवेश करते हैं, तब वह लोकों का रचनाकार सबका संचालक महान् परमेश्वर विद्यमान रहता है। सभी दिशाओं के जाज्वल्यमान रहने पर भी वह व्याप्त रहता है ॥१०,८.४०॥

उत्तरेणेव गयत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना यह साम संविदुरजस्तद्दृदशे क्व ॥१०,८.४१॥

जो साधक प्राण (गय) से उत्तर (आगे) स्थित अमृत-प्रवाह को प्राप्त करके गायत्री महाविद्या में गतिशील होते हैं, जो साम (आत्मतत्त्व से, साम (परमात्मतत्त्व) को जानते हैं, वह ही जानते हैं कि अज (अजन्मा-परमात्मा का) कहाँ प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) होता है ॥१०,८.४१॥

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥१०,८.४२॥

(अपनी शक्तियों का निवेश करके(साधना की पूर्वोक्त) धारा के साथ गतिमान् (साधक) दिव्य सम्पदाओं के संग्राम

में सत्य-धर्मपालक, सवितादेव तथा इन्द्रदेव की तरह (जयशील होकर) स्थित होता है ॥१०,८.४२॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥१०,८.४३॥

नौ द्वारों वाला पुण्डरीक जीवनरूपी कमल तीन गुणों (सत्, रज और तम) से घिरा है। उसमें जो वन्दनीय आत्मा का स्थान है, उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥१०,८.४३॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥१०,८.४४॥

निष्काम, धैर्यवान्, अमर तथा स्वयंभू ब्रह्म अपने ही रस से तृप्त रहता है। वह किसी भी विषय में न्यून नहीं है । उस धैर्यवान्, अजर तथा नित्य युवा आत्मा को जानने वाले मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होते ॥१०,८.४४॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त ९- शतौदनागौ सूक्त

शतौदना गो का वर्णन व स्तुति

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥१०,९.१॥

पापियों (हानि पहुँचाने वालों) का मुख बन्द करो। उन शत्रुओं पर वज्र प्रहार करो । इन्द्रदेव द्वारा पहले ही गयी यह 'शतौदना' शत्रुओं का विनाश करने वाली तथा यजमान (यज्ञोन्मुख व्यक्तियों अथवा प्रक्रियाओं) का मार्गदर्शन करने वाली है ॥१०,९.१॥

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद्वावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥१०,९.२॥

हे शतौदने ! आपका चर्म वेदिका बने और रोम कुशारूप हो। इस डोरी (यज्ञीयप्रक्रिया के सूत्रों) द्वारा आपको बाँधा गया है। यह मावा (रस निष्पादक यंत्र) आपके ऊपर हर्ष से नृत्य करे ॥१०,९.२॥

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जीह्वा सं मार्ष्टु अघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥१०,९.३॥

हे अहिंसनीय ! आपके बाल प्रोक्षणी बनें और जिह्वा शोधन करे । हे शतौदने ! आप पूज्य और पवित्र बनकर द्युलोक में गमन करें ॥१०,९.३॥

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥१०,९.४॥

जो मनुष्य 'शतौदना' का परिपाक करते हैं, वह कामनापूर्ति में समर्थ होते हैं और इससे हर्षित होकर त्विग्गण यथायोग्य मार्ग से वापस जाते हैं ॥१०,९.४॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥१०,९.५॥

जो 'शतौंदना' को अपूप (मालपुवों) के रूप में प्रदान करते हैं, वह अन्तरिक्ष स्थित स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं ॥१०,९.५॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति यह दिव्या यह च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥१०,९.६॥

जो 'शतौदना" गौ को हिरण्य ज्योतियुक्त करके (यज्ञीय ऊर्जा या अंतरिक्षीय प्रकाशमान प्रवाहों से संयुक्त करके) दान करते हैं, वह उन लोकों को प्राप्त करते हैं, जो दिव्य तथा पार्थिव हैं ॥१०,९.६॥

यह ते देवि शमितारः पक्तारो यह च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥१०,९.७॥

जो आपकी शान्ति के लिए तथा आपको परिपक्व करने वाले लोग हैं, वह सब आपकी सुरक्षा करेंगे। हे देवि ! आप उनसे भयभीत न हों ॥७॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान् मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥१०,९.८॥

दक्षिण की ओर से वसुदेव आपकी सुरक्षा करेंगे, उत्तर की ओर से मरुद्गण और पीछे की ओर से आदित्य गण आपकी सुरक्षा करेंगे, इसलिए आप अग्निष्टोम यज्ञ के पार गमन करें ॥१०,९.८॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च यह ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥१०,९.९॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व तथा अप्सराएँ, यह सब आपकी सुरक्षा करेंगे। आप अतिरात्र यज्ञ के पार गमन करे ॥१०,९.९॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वान् आप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०,९.१०॥

जो 'शतौदना' का दान करते हैं, वह अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वी, सूर्य, मरुत् तथा दिशाओं आदि के सम्पूर्ण लोकों को प्राप्त करते है ॥१०,९.१०॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥१०,९.११॥

हे अहिंसनीय सुभगा देवि ! आप घृत सिंचन करती हुई देवताओं को प्राप्त होंगी। आप पकाने वाले की हिंसा न करें, उन्हें स्वर्ग की ओर प्रेरित करें ॥१०,९.११॥

यह देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च यह यह चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१२॥

जो देव स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा धरती पर निवास करते हैं, उनके लिए सदैव दुग्ध, घृत तथा मधु का दोहन करें ॥१०,९.१२॥

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ यह च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१३॥

आपके जो सिर, मुख, कान तथा हनु हैं, वह दाता को, दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१३॥

यौ त ओष्ठौ यह नासिके यह शृङ्गे यह च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१४॥

आपके जो ओष्ठ, नाक, आँख तथा सींग हैं, वह दाता को, दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१४॥

यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत्सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१५॥

आपके जो फेफड़े, हृदय, मलाशय तथा कण्ठ भाग हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१५॥

यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१६॥

आपके जो यकृत, गुर्दे, आँते तथा गुदा हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१६॥

यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१७॥

आपके जो प्लीहा, गुदाभाग, कुक्षि (कोख) तथा चर्म हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१७॥

यत्ते मज्जा यदस्थि यन् मंसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१८॥

आपके जो मज्जा, ऑस्थ, मांस और रुधिर हैं, वह दाता को, दूध, दही, घी तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१८॥

यौ ते बाहू यह दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.१९॥

आपके जो बाहु, भुजाएँ, कन्धे तथा ककुत् हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.१९॥

यास्ते ग्रीवा यह स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.२०॥

आपके जो गर्दन, पीठ, कन्धे तथा पसलियाँ हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.२०॥

यौ त उरू अष्ठीवन्तौ यह श्रोणी या च ते भसत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.२१॥

आपके जो जंघा, घुटने, कूल्हे तथा गुह्यांग हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.२१॥

यत्ते पुछं यह ते बाला यदूधो यह च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.२२॥

आपके जो पूँछ, बाल, दुग्धाशय तथा थन हैं, वह दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.२२॥

यास्ते जङ्घाः याः कुष्ठिका ऋछरा यह च ते शफाः ।

आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.२३॥

आपके जो जंघा, खुट्टियाँ, खुर तथा कलाई के भाग हैं, वह दाता को दुग्ध, घृत, दही तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.२३॥

यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१०,९.२४॥

हे शतौदने ! हे अघ्ये ! आपके जो चर्म तथा रोम हैं, वह दाता को दुग्ध, घृत, दही तथा मधु प्रदान करें ॥१०,९.२४॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोदाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥१०,९.२५॥

हे देवि ! आपकेपार्श्व भाग, घृत द्वारा अभिषिचित पुरोडाश हों। हे शतौदने ! आप उनको पंख बनाकर पकाने वाले को स्वर्ग ले जाएँ ॥१०,९.२५॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।

यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१०,९.२६॥

ओखली, मूसल, चर्म तथा सूर्य में जो चावल के कण रह गए हैं अथवा जिसको मातरिश्वा ने शुद्ध करते हुए मंथन किया है, उसको होता अग्निदेव श्रेष्ठ हविरूप बनाएँ ॥१०,९.२६॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि। यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन् मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०,९.२७॥

मधुयुक्त घृत को प्रदान करने वाली दिव्य जल धाराओं को हम ब्राह्मणों के हाथों में अलग-अलग प्रदान करते हैं। हे ब्राह्मणो ! जिस कामना के लिए हम आपका अभिषेक करते हैं, वह सब हमें प्राप्त हों और हम धनपति बने ॥१०,९.२७॥

॥अथर्ववेद – दशम काण्डम्॥

सूक्त १० – वशागौ सूक्त

वशा गौ का वर्णन व स्तुति

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१०,१०.१॥

हे अहिंसनीय गौ ! उत्पन्न हुई तथा उत्पन्न होने वाली आपको नमस्कार है। आपके बालों, खुरों तथा विभिन्न रूपों के लिए नमस्कार हैं ॥१०,१०.१॥

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात्॥१०,१०.२॥

जो वशा गौ के सात जीवन- प्रवाहों, सात अन्तर-स्थानों तथा यज्ञ के सिर को जानते हैं, वह ही वशा गौ को स्वीकार कर सकते हैं ॥१०,१०.२॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥१०,१०.३॥

सात जीवन- प्रवाहों, सात अन्तर स्थानों तथा यज्ञ के सिर को भी हम जानते हैं । इसमें जो विशेष आलोकित होने वाले सोमदेव हैं, उनको भी हम जानते हैं ॥१०,१०.३॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाछावदामसि ॥१०,१०.४॥

जिसने द्यावा, पृथिवी और समस्त जल की सुरक्षा की है, उस सहस्रधारा प्रदान करने वाली वशा गौ से हम ज्ञान द्वारा सम्मुख होकर वार्तालाप करते हैं ॥१०,१०.४॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
यह देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥१०,१०.५॥

इसके पृष्ठ में दुग्ध के सैकड़ों बर्तन हैं, सैकड़ों दूध दुहने वाले हैं और सैकड़ों संरक्षक हैं। जो देवता उस गाय से

जीवित रहते हैं, वह एकमत से उसके महत्त्व को जानते हैं ॥१०,१०.५॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवामप्येति ब्रह्मणा १०,१०.॥६॥

यज्ञ में विशेष स्थान प्राप्त, दूध देने वाली, अन्नरूप प्राण को धारण करने से धरती पर प्रसिद्ध तथा पर्जन्य की पत्नी (उर्वरता) वशा, ब्रह्मरूप अन्न द्वारा देवताओं को प्राप्त करती है ॥१०,१०.६॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥१०,१०.७॥

हे वशी गौ ! अग्निदेव और सोमदेव आप में प्रविष्ट हुए हैं । हे कल्याणकारी गौ ! पर्जन्य आपका दुग्ध स्थान है और हे वशे ! विद्युत् आपके स्तन हैं ॥१०,१०.७॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥१०,१०.८॥

हे वशा गौ ! आप सबसे पहले जल प्रदान करती हैं, उसके बाद उर्वरक भूमि प्रदान करती हैं, फिर तीसरी राष्ट्रीयशक्ति प्रदान करती हैं । हे वशे ! तत्पश्चात् आप अन्न और दूध प्रदान करती हैं ॥१०,१०.८॥

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतवरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वशे ॥१०,१०.९॥

हे ऋतावरि ! जब आप आदित्यों द्वारा बुलाए जाने पर उनके समीप गयी थीं, तब हे वशे ! इन्द्रदेव ने आपको हजारों पात्रों से सोमरस पिलाया था ॥१०,१०.९॥

यदनूचीन्द्रमैरात्त्वा ऋषभोऽह्वयत्।
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥१०,१०.१०॥

हे गौ ! जब आप अनुकूलता से इन्द्रदेव के समीप थीं, तब वृषभ ने आपको समीप से बुलाया था, इसी कारण क्रोधित होकर वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ने आपके दूध और जल को हर लिया था ॥१०,१०.१०॥

यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥१०,१०.११॥

हे वशा गौ ! जब क्रोधित होकर धनपति ने आपके दुग्ध को हर लिया था, तब से आज तक यह स्वर्गधाम ही सोमरूप तीन पात्रों में उसकी सुरक्षा कर रहा है ॥१०,१०.११॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्ययह ॥१०,१०.१२॥

जहाँ पर दीक्षित होकर 'अथर्वा' ऋषि मनोहर आसन पर बैठते हैं, उनके समीप देवी वशा तीनों पात्रों में रखा हुआ सोमरस ले जाती हैं ॥१०,१०.१२॥

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठद्गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१०,१०.१३॥

सोम तथा समस्त पैर वालों के साथ वशा गौ सुसंगत हो जाती हैं। वह कलि (ध्वनि करने वाले) गन्धर्वो के साथ समुद्र पर भी प्रतिष्ठित होती है ॥१०,१०.१३॥

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१०,१०.१४॥

वायु तथा समस्त पैर वाले प्राणियों के संग यह वशा गौ सुसंगत हो गई थी। यह ऋचा तथा साम को धारण करती हुई समुद्र में नर्तन करती है ॥१०,१०.१४॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१०,१०.१५॥

सूर्य तथा समस्त नेत्र वालों से मिलती हुई, ज्योतियों को धारण करती हुई, कल्याणकारी वशा, समुद्र से भी अधिक विख्यात हुई ॥१०,१०.१५॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥१०,१०.१६॥

हे अन्न प्रदान करने वाली गौ ! जब आप स्वर्णिम आभूषणों से सम्पन्न होकर खड़ी हुई थीं, उस समय हे वशे ! आपके समीप समुद्र अश्व बनकर आ गया ॥१०,१०.१६॥

तद्भद्राः समगछन्त वशा देष्ट्रयथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्ययह ॥१०,१०.१७॥

जहाँ पर दीक्षित होकर 'अथर्वा ऋषि स्वर्णिम आसन पर विराजते हैं, वहाँ पर वशा देष्ट्री तथा स्वधा (देने वाली तथा तृप्त करने वाली) होकर पहुँच जाती है ॥१०,१०.१७॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१०,१०.१८॥

क्षत्रियों की माता वशा है, हे स्वधे ! आपकी माता भी वशा है । वशा से आयुध उत्पन्न हुए हैं और उससे चित्त विनिर्मित हुआ है ॥१०,१०.१८॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद्ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१०,१०.१९॥

ब्रह्म के उच्च भाग (ककुद्) से एक बूंद ऊपर उछला, हे वशे ! उससे आप प्रकट हुईं, उसके बाद होता उत्पन्न हुए ॥१०,१०.१९॥

आस्नस्ते गाथा अभवन्न् उष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥१०,१०.२०॥

हे वशे ! आपके मुख से गाथाएँ बनी हैं, गर्दन के भागों से बल प्रकट हुआ है, दुग्धाशय से यज्ञ प्रकट हुआ है और स्तनों से किरणें प्रकट हुई है ॥१०,१०.२०॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥१०,१०.२१॥

हे वशे ! आपके बाहुओं तथा पैरों से गमन होता है। आपकी आँतों से विविध पदार्थ तथा उदर से वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥१०,१०.२१॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत्स हि नेत्रमवेत्तव ॥१०,१०.२२॥

हे वशे ! जब आप वरुणदेव के उदर में प्रविष्ट हुई थीं, तब ब्रह्मा ने आपको बुलाया था और वह ही आपके नेत्र को जान सके थे ॥१०,१०.२२॥

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहु वशेति ब्रह्मभिः कॢप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥१०,१०.२३॥

ऐसा कहते हैं, कि समस्त प्राणी गर्भ से पैदा होने से भयभीत होते हैं, यह वशा ही उनको पैदा करती है और इसका भाई मन्त्रों से समर्थ होने वाला कर्म है ॥१०,१०.२३॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥१०,१०.२४॥

(वशी का) एक (अन्य भाई) संघर्षपूर्वक सृजन करता है ।एक यज्ञ पार कराने वाला है ।पार होने वालों का नेत्र वशा ही है ॥१०,१०.२४॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत्।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥१०,१०.२५॥

वशा यज्ञ को स्वीकार करती है, उसने ही सूर्य को धारण किया है । ब्रह्मा के साथ वशा में ओदन भी प्रविष्ट है ॥१०,१०.२५॥

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या असुराः पितर ऋषयः ॥१०,१०.२६॥

देवगण 'वशा' को अमृत कहते हैं और उसे ही मृत्यु समझकर उसकी उपासना करते हैं। देव, मानव, असुर, पितर तथा ऋषि, यह सब वशामय ही हैं ॥१०,१०.२६॥

य एवं विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात्।

तथा हि यज्ञः सर्वपाद्दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥१०,१०.२७॥

जो इस ज्ञान को जानते हैं, वह 'वशा' का प्रतिग्रहण करें । 'वशा' के दाता को यज्ञ अविचलित भाव से सब फल प्रदान करता है ॥१०,१०.२७॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥१०,१०.२८॥

वरुणदेव के मुँह के अन्दर तीन जिह्वाएँ चमकती है। उनके बीच में जो विशेषरूप से आलोकित होती है, वह 'वशा' ही है। अत: उसे दान में स्वीकार करना दुरूह है ॥१०,१०.२८॥

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥१०,१०.२९॥

'वशा' गौ का वीर्य चार भागों में विभक्त है। उसका चौथाई भाग जल, चौथाई अमृत, चौथाई यज्ञ तथा चौथाई पशु है ॥१०,१०.२९॥

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च यह ॥१०,१०.३०॥

'वशा' ही द्यौ और धरती हैं, 'वशा' ही प्रजापालक विष्णु हैं । जो साध्य तथा वसु देवगण हैं, वह 'वशा' का ही दुग्धपान करते हैं ॥१०,१०.३०॥

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च यह ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥१०,१०.३१॥

'वशा' का दुग्धपान करने वाले साध्य और वसु, सूर्यमण्डल में विद्यमान देवों के स्थान में दुग्ध की ही उपासना करते हैं ॥१०,१०.३१॥

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥१०,१०.३२॥

इनमें से एक सोम का दोहन करते हैं और एक घी को प्राप्त करने की साधना करते हैं। जो ऐसे 14 को गौ प्रदान करते हैं, वह स्वर्गलोक में गमन करते हैं ॥१०,१०.३२॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥१०,१०.३३॥

मनुष्य ब्राह्मणों को 'बशा' का दान कर समस्त लोकों को प्राप्त करते है। इस विशा' में सत्य, ब्रह्म तथा तप आश्रित (समाहित) हैं ॥१०,१०.३३॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥१०,१०.३४॥

देवगण 'वशा' पर जीवन व्यतीत करते हैं और मनुष्य भी 'वशा' पर जीवित रहते हैं। जहाँ तक आदित्य का आलोक पहुँच सकता है, वह सब 'वशा' ही है ॥१०,१०.३४॥

॥ इति दशम काण्डम् ॥